(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

ार्षिक मू० २।।)	सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।	एक अंक ।)
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ।।

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य,	सहा० सम्पा०—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ७	मथुरा, १ दिसम्बर सन् १९४६ ई०	अंक १२

विपत्ति की आशंका से घबराइए नहीं।

एक महापुरुष का कथन है कि "कठिनाई" एक विशाल काय, भयंकर आकृति के, किन्तु कागज के बने हुए हाथी के समान है। जिसे दूर से देखने पर बड़ा डर लगता है, पर एक बार जो साहस करके पास पहुँच जाता है उसे प्रतीत होता है कि वह केवल एक कागज का खिलौना मात्र है। बहुत से लोग चूहों की खटपट सुनकर डर जाते हैं पर ऐसे भी लाखों योद्धा हैं जो दिन रात आग उगलने वाली तोपों की छाया में सोते हैं। एक व्यक्ति को एक घटना बज्रपात के समान असह्य अनुभव होती है परन्तु दूसरे आदमी पर जब वही घटना घटित होती है तो लापरवाही से कहता है—"उँह, क्या चिन्ता है, इससे भी निपट लेंगे।" ऐसे लोगों के लिए वह दुर्घटना "स्वाद परिवर्तन" की एक सामान्य बात होती है। विपत्ति अपना काम करती है और वे अपना काम करते रहते हैं।

बादलों की छाया की भांति बुरी घड़ी आती है और समयानुसार टल जाती है, बहादुर आदमी हर नई परिस्थिति के लिए तैयार रहता है पिछले दिनों यदि मौज बाहर के साधनों का वह उपभोग करता था पर अब मुश्किलों से भरे हुए अभाव ग्रस्त दिन बिताने पड़ेंगे तो वह इसके लिए भी तैयार रहता है। इस प्रकार का साहस रखने वाले वीर पुरुष ही इस संसार में सुखी जीवन का उपयोग करने के अधिकारी हैं। जो लोग भविष्य के अन्धकार की दुखद कल्पनाएं कर करके अभी से शिर फोड रहे हैं वे एक प्रकार के नास्तिक हैं। ऐसे लोगों के लिए यह संसार सदा से दुखमय नरक रूप रहा है और आगे भी सदा दुख रूप ही रहेगा। हमें चाहिए कि हर स्थिति में प्रसन्न रहें और भावी विपत्ति की आशंका से घबराने की बजाय उससे मुकाबिला करने की तैयारी करें।

———

पहले इस पृष्ट को पढ़ लीजिए

आगामी वर्ष के संबंध में कुछ आवश्यक जानकारियां

सन् ४७ के आरंभिक अङ्कों में अखण्ड ज्योति अपने पाठकों को बडी अमूल्य पाठ्य सामिग्री भेट कर रही है। अखण्ड ज्योति संपादक ने विगत बीस वर्षों जो आध्यात्मिक शोधें की हैं उनका निचोड़ इन अङ्कों में होगा। ऐसी अद्भुत एवं अपूर्व सामिग्री पाठकों के लिए कितनी उपयोगी होगी इसका कुछ अनुमान नीचे दी हुई लेखों की सूची से लगाया जा सकता है।

जनवरी के अंक में निम्न लिखित लेख रहेंगे—

(१) जीवन का सर्वोपरि लाभ, (२) ब्रह्म विद्या के सात सिद्धान्त, (३) साधन का विज्ञान, (४) साधनाओं का उद्देश्य, (५) शक्ति से सिद्धि, (६) सम्पन्नता के चार आधार, (७) आत्मबल की अकूत शक्ति, (८) योग शक्तियों का उद्गम, (९) प्रत्यक्ष अष्ट सिद्धियां, (१०) निरर्थक मृगतृष्णा,

फरवरी के अंक में अध्यात्म के नाम पर जो धूर्तता, ठगी, छल, मायाकर होता है, उसका विवेचन होगा। इस अंक में निम्न लेख रहेंगे।

(१) दड़ा एवं सट्टा बताने वाले पीर, (२) सोना बनाने वाले सिद्ध, (३) त्रिकाल जानने वाले शाक्त, (४) पेशाव से दिया जलाने वाले योगी, (५) मूक प्रश्न बताने वाले ज्योतिषी, (६) भूतों के ऐजेन्ट, (७) भविष्य वक्ताओं की धूर्तता, (८) दिव्यदर्शी तान्त्रिक, (९) मंत्र बल से वस्तुऐं मँगाने वाले महात्मा, (१०) शाप से अन्धा बनाने वाले और बरदान से नेत्र ज्योति देने वाले अवधूत (११) सब रोगों को दूर करने वाला कुआ, (१२) भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन कराने वाले संत, (१३) निष्कलंक के अवतार, (१४) जलती अग्नि पर चलने वाले योगिराज, (१५) छाया पुरुष एवं योगिनी वाले सिद्धजी, (१६) मंत्र बल से अग्नि प्रकट करने वाले वेदपाठी।

मार्च के अंक में—जादू के लगभग ५० खेलों का रहस्य होगा। यह खेल एक से एक बढ कर हैरत अंगेज है इनमें से दो चार जानने वाला भी पूरा जादूगर बन जाता है। फिर इन सब को जानने वाले के लिये कहना ही क्या है। इन खेलों के रहस्य ऐसी अच्छी तरह समझाये जायेंगे जिससे पाठकों को उनकी पोल भली भांति समझ में आजायगी।

अप्रेल का अंक जनवरी के अंक का उत्तरार्ध होगा। जनवरी के अंक में अध्यात्मवाद का वैज्ञानिक आधार समझाया जायगा। अप्रेल के अंक में चौरासी प्रकार के योगों में से चुन चुन कर ऐसी साधनाऐं पाठकों के सामने उपस्थित की जायगी, जिनका अभ्यास करके अपरिमित लाभ उठाया जासकता है। कार्यव्यस्त लोग भी उन साधनों के आधार पर ऊंची आध्यात्म भूमिकाओं में पहुँच सकते हैं और लोक तथा परलोक के महत्तम लाभों को प्राप्त कर सकते हैं।

स्मरण रखिए, अंक नियत संख्या में छपेंगे। और सामिग्री अत्यधिक महत्व पूर्ण होने से वह थोड़े ही दिन में समाप्त होजायेंगे। इसलिए जो पाठक चंदा भेजने में देर करेंगे उन्हें इस अमूल्य पाठ्य सामिग्री से वंचित रहना पड़ेगा!

अखंड ज्योति का चंदा २।।) होगया।

इस वर्ष अखंड ज्योति की पृष्ट संख्या सवाई की जारही है। और उसी हिसाब से मूल्य भी सवाया किया जारहा है। अब सन् ४७ से चंदा दो रुपया आठ आना होगा। वैसे तो इन दिनों सरकार ने कागज का रेट बढाकर सात आना पोंएड कर दिया और छपाई के दामों में अन्धाधुन्ध वृद्धि होगई है। इस लिए उतने ही पृष्ट रहने पर भी मूल्य बढना चाहिए था। परन्तु फिर भी अखंड ज्योति उस घाटे को ध्यान में रखकर नहीं वरन् पृष्ट बढाने के अनुपात से ही चन्दा बढा रही है। इस में कमी के लिए कोई सज्जन व्यर्थ पत्र व्यवहार न करें।

—मैनेजर

१ दिसम्बर सन् १९४६ ई०

उत्पातों की जड़ को काटिए।

आज देश का साम्प्रदायिक वातावरण जितना घृणा, द्वेष, अविश्वास, भय, आशंका से आच्छादित है उतना कई शताब्दियों और पीढियों से नहीं देखा गया। हिन्दू मुसलिम विद्वेष के लोमहर्षक समाचार चारों ओर से आरहे हैं। सैकड़ों हजारों बहुमूल्य जीवन छुरों के घाट उतर गये। अनेक निरपराध बालक, वृद्ध तथा बहिन बेटियों को इस पशुता पर बलि चढ़ना पड़ा। त्राहि त्राहि करते हुए अनेकों कातर मानव प्राणी शैतानों की राक्षसी डाढों के नीचे कुचल कर नष्ट हो गये। तेजाव फेंक कर रास्ता चलते बगल में छुरा भोंक कर जिस आततायीपन का आज नंगा प्रदर्शन होरहा है उससे पशुता भी लज्जित होजाती है।

इस प्रकार की नारकीय अग्नि एक स्थान से दूसरे स्थान में छूत की बीमारी की तरह उड उडकर पहुँच रही है और नित नये काण्ड प्रस्तुत कर रही है। आग लगा देना सुगम है पर उस पर काबू पाना मुश्किल है। नादरशाह और चंगेज को मात कर देने और खून की नदी बहादेने की धमकी देने वाले विगत कई वर्षों से निरन्तर घृणा और विद्वेष का प्रचार कर रहे थे। साम्प्रदायिकता का विषैला वातावरण तैयार करने में उन्होंने ऐडी से चोटी तक का पसीना एक कर दिया था। कट्टरता, अनुदारता, असहिष्णुता, और धर्मान्धता पर ही उनकी लीडरी टिकी हुई थी। सेवा त्याग और बलिदान से कोसों दूर रहने वाले ये मजहबी लीडर धर्मान्धता विद्वेष और घृणा फैला कर अपनी लीडरी कायम किये हुए थे उसे मजबूत बनाने के लिए उन्होंने अपने हथकंडों को और भी उग्र कर दिया। "सीधी कार्यवाही" का आरम्भ जिस तरीके से हुआ उससे प्रत्येक समझदार व्यक्ति सन्न रह गया है।

घृणा से घृणा की उत्पत्ति होती है। द्वेष से द्वेष बढ़ता है। अविश्वास से अविश्वास की और आक्रमण से आक्रमण की उत्पत्ति होती है। तालाब में पत्थर फेंकने पर छींटे उड़े बिना नहीं रह सकते, कूए में जैसी आवाज की जाती है उसकी प्रतिध्वनि तुरन्त ही आती है। रास्ते में असहाय पड़ी हुई धूलि भी लात मारने पर ऊपर उडती है और सिर पर चढने का प्रयत्न करती है, दबी हुई चींटी भी काट लेती है। यह ऐसी सचाइयां हैं जिनसे इनकार नहीं किया जा सकता। छुरे का जवाब देने के लिए लाठी निकल ही आती है। नोआखाली में जो संगठित, व्यापक, विस्तृत एवं दिल दहला देने वाली पशुता बरती गई उसकी प्रतिक्रिया विहार में हुई। उसी वर्बरता का नंगा रूप वहां भी देखने को मिला। चिनगारी एक स्थान से दूसरे स्थानों को उड रही हैं और गढ़मुक्तेश्वर, डासना मेरठ, दिल्ली, आगरा इलाहाबाद आदि से साम्प्रदायिक उपद्रवों के समाचार आरहे हैं। इन उपद्रवों का देश के सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन पर कितना बुरा प्रभाव पड़ रहा है यह किसी से छुपा नहीं है। भविष्य के संबंध में आशंकाओं की कल्पनाओं से लोगों के चित्त विचलित होरहे हैं।

आग लगाने वालों को विवेक बुद्धि की चुनौती है कि वे अपनी विषैली नीति की निस्सारता सोचें। घृणा से घृणा बढ़ेगी। द्वेष से द्वेष उत्पन्न होगा। इससे किसी का कोई हित नहीं हो सकता। आततायीपन से न तो किसी को शक्ति प्राप्त होती है और न सफलता। इस प्रकार घृणा का प्रचार करने

से मनुष्य अपने विश्वासियों की सबसे बड़ी कुसेवा करता क्योंकि अन्त में सभी दृष्टियों से उसे ही घाटे में रहना पड़ता है जो अनौचित्य पूर्ण आक्रमणात्मक नीति अपनाता है।

आज के अशान्त वातावरण में नेताओं की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है विशेष रूप से उनकी जिन्होंने एडी से चोटी का पसीना बहा कर अपने अनुगामियों को उत्तेजना, एवं घृणा से भरा है और आक्रमण के लिए तैयार किया है। कुछ वर्ष पूर्ण तक हिन्दू मुसलमान प्रेम पूर्वक सच्चे पडौसी की तरह भाई भाई की भांति रहते चले आरहे थे, दोनों एक दूसरे के सुख दुख में साथ रहते थे, झगड़े फिसाद की कोई बात न थी। सन् १६२१ में साम्प्रदामिक एकता का जो सुन्दर वातावरण था वह आँखों से ओझल नहीं हुआ है। हर आज दूसरे ही दृश्य देखने में आरहे हैं। वारांगना के समान रूप बदलने वाली राजनीति के हथकंडों ने कुछ का कुछ कर दिया है।

वर्तमान सम्प्रदयिक अशान्ति को 'कुछ गुण्डों की शैतानी' कह कर नजर अन्दाज नहीं किया जासकता। उसके पीछे उस राजनीति का हाथ है जिसने विद्वेष की चिनगारियां फैलाने का भयंकर खेल अपने हाथ में लिया है। इस प्रकार की नीति का यही परिणाम होसकता है जो आज चारों ओर देखने में आरहा है।

अशान्ति एवं उत्पातों को दबाने के लिए पुलिस और फौज को काम में लाया जारहा है पर इतने से ही काम न चलेगा। उन उत्पातों की जननी वह विचार धारा है जो जो कट्टरता द्वेष, घृणा और उत्पातों को प्रोत्साहन देती है। जब तक उस नीति को रोका न जायगा तब तक शान्ति स्थापित होना कठिन है। लोगों को उत्तेजित करने वाले और लडाने वाले नेता मौज से आराम कुर्सियों पर बैठे रहते हैं और उनके नासमझ अनुयायी अपनी या दूसरों की हानि करते हैं। वे खुद खून में हाथ रगते और रंगाते हैं। ये ही लोग पकड़े जाने पर कठोर राजदंड पाते हैं या बदले की प्रति क्रिया के शिकार होते हैं।

स्वस्थ वातावरण स्थापित करने के लिए घृणा, धमकी, आक्रमण, विद्वेष उत्पन्न करने वाला प्रचार करने वालों पर नियंत्रण करना होगा। इस कोढ को मरहम लगाकर अच्छा न किया जासकेगा। इसके लिए रक्त शोधक चिकित्सा की आवश्यकता है। किसी भी देश की उत्तरदायी सरकार का यह पहला फर्ज है कि वह ध्यान पूर्वक देखे कि वे कौन लोग हैं जो घृणा का वातावरण तैयार करने में लगे हुए हैं, उनकी गति विधि को रोकना होगा, चाहे वे कितने ही बड़े आदमी क्यों न हों, अशान्ति उत्पन्न कराने वाले मौज से ऐश उड़ावें और बेचारी भोली जनता आपस में कट मरे. इस स्थिति को जारी रखना सर्वथा अबांछनीय है। इस स्थिति के रहते स्वस्थ वातावरण उत्पन्न होना बहुत कठिन है।

जिनके हाथ में शक्ति हो उनसे लड़कर छीनने की बात समझ में आसकती है. पर जिनके हाथ में कोई सत्ता नहीं है, उन निर पराक्ष भोले भाले नर नारियों पर आक्रमण करना और उन्हें गाजर मूली की तरह कतर डालना, नीचातिनी कुकृत्य एवं कसाई पन है। इस कसाई पन को जो लोग अपनाते हैं वे शैतान है पर उन्हें क्या कहा जाय जो इस शैतानी के लिए खुले आम गुण्डों को उभाड़ रहे हैं। नादिर-शाह और चंगेजखां का अनुकरण जिस प्रकार होरहा है और उसकी प्रतिक्रिया से जो बदले के आक्रमण होरहे हैं वे किसी का भी हित नहीं हो सकता।

अखंड ज्योति, देश के विचारकों से, राजनीतिज्ञों से, नेताओं से, शासकों से एव जन साधारण से अपील करती है कि इन शैतानी सम्प्रदायिक उत्पातों के भस्मासुर को रोको, यह काबू से बाहर हुआ जारहा है। आग लगाने वाले तमाशा देख रहे हैं और इस भस्मासुर के प्रकोप से निरीह जनता भुनी जारही है। इस दावाबल को अन्त करना है तो तात्तकालिक रोक थाम के अतिरिक्त उन लोगों को भी काबू में किया जाना चाहिए जिन्होंने मनुष्यता को कलंकित करने वाली यह आग लगाई है।

———

स्वयं विचार करना सीखो

(दौलतराम जी कटरहा, बी० ए० दमोह)

अंग्रेज कवि मिल्टन ने अपनी एक रचना में फापिंगटन नामक एक वैचित्र्य पूर्ण तथा हास्य-रस प्रधान चरित्र का उल्लेख किया है। लार्ड साहिब कभी किसी पुस्तक का अनुशीलन न करते और वे सदा अपनी ही बुद्धि की उपज तथा उर्वरा-पन पर निर्भर रहना पसन्द करते थे। उनका यह भी कहना था कि पुस्तकों को पढने से हमारी मौलिकता नष्ट तथा विचार शक्ति क्षीण हो जाती है। लार्ड फापिंगटन के विचार और कार्य भले ही हास्यास्पद और वैचित्र्य-पूर्ण रहे हों किंतु केवल इसी कारण ही उनका यह कथन उपहासास्पद तथा हेय नहीं हो सकता।

एक विषय पर आज हमारे सामने अनेकों की पुस्तकें उपस्थित हैं। यदि समालोचना का विकास इस युग में न हुआ होता तो हम में से अनेकों के सामने यह समस्या उठ खडी होती कि संघर्ष-मय जीवन के इस कठिनता से बचाए हुए समय में हम किन पुस्तकों को पढें और किन्हें छोडें।

समालोचकों ने हमारी इस कठिनाई को बहुत अंशों में हल कर दिया है फिर भी पठनीय पुस्तकों की इतनी अधिक बाहुल्यता है कि उन्हें देख कर हमें विद्वान् न्यूटन की भांति ही अभिमान त्याग कर कहना पडता है कि हमने अभी तक विशाल समुद्र के किनारे पड़े हुए कुछ ही कंकड़ों को बीना है। अतएव हम देखते हैं कि ज्ञान का भांडार हमारे सामने विद्वानों ने बिखेर सा दिया है। प्रत्येक विषय के सम्बन्ध में हम उनकी सम्मति ले सकते हैं। किंतु जब हम उनकी पुस्तकों को पढते हैं तब उनके बहुत से विचारों और विश्वासों को भी बहुधा चुपचाप ग्रहण कर लेते हैं और इस तरह बौद्धिक क्षेत्र में हम अधिकतर परतंत्र हो जाते हैं। जिस तरह अपढ लोगों के सहायतार्थ उनके पत्र आदी हम लिख दिया करते हैं उसी तरह ये विद्वान् भी हमारे सोचने की बातों को हमारे लिये स्वयं सोच दिया करते हैं। इस तरह लिखे ही ये हमारे कार्य को हलका कर देते हैं किंतु यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस तरह वे हमें जो योभन देते हैं। उसके कारण हम अपने सोचने की बातों के स्वयं सोचने के अवसर को खो बैठते हैं और बहुधा इनके झूठे अथवा सच्चे विश्वासों को भी अपने ऊपर लाद लेते हैं। इस प्रकार जीवन सम्बन्धी अनेकों प्रश्नों के संबंध में हमारी विचार धारा हमारे पठित ग्रन्थों के ही अनुरूप होजाती है और उस विचार प्रणाली में हमारे व्यक्तित्व की छाप नहीं रहती। उन विचारों से हमारा व्यक्तित्व ढंक-सा जाता है और हम केवल ग्रामोफोन के रिकार्ड की नाईं ही दूसरों के विचारों को उगलते रहते हैं। इस तरह हमारे विचारों में कोई व्यक्तिगत विशेषता नहीं रह जाती। यही व्यक्तिगत विशेषता तो हमारे बौद्धिक जीवन का प्राण तथा जीवन है जिसको कि खो देने पर हमारा व्यक्तित्व भी खो जाता है। व्यक्तित्व का आधार व्यक्तिगत विशेषता ही है। फिर भी हम बहुधा यही पाते हैं कि जिन विषयों पर हम विचार करना चाहते हैं उन पर पहिले से ही अनेक लोग भिन्न २ दृष्टि कोणों से विचार कर गए हैं, अतएव हमें उन्हीं के विचारों को स्वीकार करने में ही सरलता होती है और उन प्रश्नों पर हम स्वय विचार नहीं करते। इस तरह हमें विचार शीलता तथा मौलिकता का विकाश अच्छी तरह नहीं होने पाता।

विद्यार्थी जीवन का मेरा अनुभव है कि जब हम लोगों को गणित के प्रश्न घर हर हल करने के लिए दिए जाते थे तब हम लोगों में से बहुतेरे कुंजियों से उन्हें उतार लेते थे और जब कभी किसी विद्यार्थी के पास स्कूल में ही कुंजी निकल आती थी तो गुरुजी क्रोध करते थे। क्रोध करने का कारण उस समय मैं नहीं समझता था किंतु आज वह स्पष्ट है। कुंजियां विद्यार्थी की सहायता तो अवश्य करती हैं किंतु साथ साथ उसमें अनुद्यम शीलता की भी वृद्धि करती हैं और

उसमें स्वावलम्बन की भावनाओं का ह्रास होता है। अतः हम देखते हैं कि लार्ड फार्पिंगटन की विचार प्रणाली में कुछ न कुछ सत्यता अवश्य विद्यमान है।

अब यहां यह प्रश्न भी उठ सकता है कि क्या गिरा गोतीत आत्मा के सम्बन्ध में भी हम स्वतंत्र रूप से विचार किया करें। इन पर विचार करते समय हमें पता चलेगा कि हम न उनका उत्तर उसी तरह दे सकते हैं जिस तरह कि गणित और विज्ञान के प्रश्नों के उत्तर और न हम उनके सम्बन्ध में वैज्ञानिक प्रणाली पर ही सोच सकते हैं। ऐसी अवस्था में हमें बहुत-सी बातों पर विश्वास ही करना होगा, उन पर ईमान ही लाना होगा। भगवान् मुहम्मद साहिब ने इसी लिये तो अपने अनुयायियों से, यह समझ कर ही कि ये विषय इन्द्रियातीत हैं, यह कहा था कि ईश्वर पर ईमान लाओ क्योंकि ईमान ही इस्लाम का मूल तत्व है। किन्तु दुर्भाग्य वश लोग उन्हें ठीक ठीक न समझ सके। अतएव हमें आप्त वाक्यों के प्रति श्रद्धा और ईमान रखते हुए यह भी स्मरण रखना होगा कि जब तक किसी विश्वास चाहे वह धार्मिक हो अथवा सामाजिक, की सत्यता के हमें पूर्ण प्रमाण नहीं मिलते तब तक वे विश्वास मात्र ही हैं ध्रुव सत्य नहीं। ज्ञानार्जन का हमारा तरीका है कि हम अपने प्रत्येक विश्वास को अस्वीकार करना सीखें, उसे चुनौती दें और जब तक उसके सत्य होने के प्रमाण हमें न मिले तब तक उसे हम विश्वास की ही श्रेणी में रखें, सत्य की श्रेणी में नहीं। इस तरह हम अपने विचारों को विश्वास और सत्य की दो श्रेणियों में विभक्त कर उस असहिष्णुता से बचे रहेंगे जो कि विभिन्न मतावलम्बियों में ए दूसरे के प्रति रहा करती हैं।

अपने विद्यार्थी जीवन में मैं सोचा करता था कि ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करने वाला कोई भी व्यक्ति चरित्र-वान् नहीं हो सकता। किंतु आज यह बात स्पष्ट-तया गलत मालूम होती है। कपिल का सांख्य शास्त्र कहता है "प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः" (प्रमाण के अभाव में उसका अस्तित्व नहीं सिद्ध होता) पतंजलि भी ईश्वर के स्रष्टापन को स्वीकार नहीं करते और भगवान् बुद्ध ने भी अपने पट्ट-शिष्य आनंद से कह रखा था कि "आनन्द; ईश्वर के अस्तित्व को किसी ने सिद्ध नहीं किया, इस झमेले में मत पड़ो"। फिर भी हम जानते हैं कि भगवान बुद्ध आध्यात्मिक जीवन के जिस उच्चतम शिखर तक पहुँचे हैं, उस तक पहुँचना दूर रहा, उसके पास तक शायद ही कोई पहुंचा हो और अपनी विचार तथा उपदेश पद्धति में ईश्वर का सहारा न लेते हुए उन्होंने जिस उच्च आध्यात्मिक जीवन का उपदेश किया वह बेजोड़ है तथा विश्व की अमूल्य निधि है। अतः चरित्रवान् बनने के लिये ईश्वर नाम के आश्रय की अनिवार्यता सिद्ध नहीं होती। सद्गुणों का आधार समाज शास्त्र है।

हमारा इस बात पर जोर देना कि हम जैसा सोचते हैं वैसा दूसरे भी सोचें असहिष्णुता तथा संकीर्णता है। हम मानते हैं कि यदि सब लोग अपनी धारणाओं को एक-सा बनालें तो हमारे विचारों में समानता आजावेगी किंतु न तो यह सम्भव ही है और न जीवन में उसकी हमें उतनी आवश्यकता ही है जितनी कि सामंजस्य शीलता सहिष्णुता का। हमें अपना सारे का सारा समय, दूसरों के विचारों को ही पढने में व्यतीत न कर देना चाहिये। हमारे हृदय में नवीन बातें जानने के लिये उत्साह हो किंतु शास्त्र वासना जन्य यह उत्साह उस उतावली का रूप न धारण कर ले जिससे कि हम स्वयं विचार करने की आदत को ही तिलांजलि दे दें। अनेक विचारों के परस्पर विरोधी विचारों को पढने से सदा होने वाली उलझन से छुटकारा पाने का एक यही उपाय रह जाता है कि उन बातों पर स्वतंत्रता और निष्पक्षता के साथ हम स्वयं सोचें। पढें कम किंतु मनन करें अधिक। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वयं विचारक एवं मनन शील बनने पर ही हम उस वस्तु को ढूंढने की योग्यता संपादित कर सकेंगे।

कर्म-योग का सन्देश !

(श्री १०८ स्वामी श्री शिवानन्द जी सरस्वती)

आत्म भाव के साथ किसी पारमार्थिक संस्था की ओर से मानव-समाज की निस्वार्थ सेवा, भूखों को अन्न दान करने, निर्धनों को वस्त्रदान देकर, रोगियों की परिचर्या में रत रह कर, अछूतों को सान्त्वना देकर, गिरे हुओं को उठाकर सीने से लगाते हुए ज़रूरत मन्दों की जरूरतों को दूर कर के तथा अज्ञानियों तथा अशिक्षितों को ज्ञान की शिक्षा देकर बिना अपनी इन सेवाओं के बदला चाहे जो मनुष्य वास्तव में दूसरों की यथार्थ सेवा करते हैं, वे प्रभु के प्यारे हैं। तुम यह समझ कर सेवा करो कि भगवान के आदेशानुसार सेवा कर रहे हो निमित्त मात्र बन कर कारीगर के औज़ार मात्र की भांति सेवा कार्य करो। सेवा करने से तुम्हारा मन पवित्र होगा, और तुम्हें उच्चतम सत्य की प्राप्ति होगी।

हे मानव ! तुम भगवान् को कहां ढूंढते हो ? उपरोक्त सेवित रूप ही भगवान के रूप समझो। इन्हीं में भगवान का आभास मानो। यदि तुम सब की सेवा नारायण-भाव से करोगे तो तुम्हारी यह सेवा भगवत्सेवा ही समझी जायगी। मानव-सेवा ही यथार्थ भगवत्सेवा है। मनुष्य-सेवा ही भगवत्पूजा और इष्ट सिद्धि का साधन है। जब तुम इन निरीह जन-साधारण की सेवा प्रेम से नहीं कर सकते, तो संसार में तुम्हें कहीं भी भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती।

वह पुरुष जो दुनियां की सेवा करता है, वास्तव में वह अपनी सेवा करता है। वह व्यक्ति जो औरों की सहायता करता है, वस्तुतः अपनी सहायता करता है। इसलिये जब तुम दूसरों की सेवा करो, उस समय सदैव यह विचार रक्खो कि भगवान् ने तुम्हें आत्मोन्नति का स्वर्ण-अवसर प्रदान किया है। सेवा द्वारा ही तुम अपने दोषों का मार्जन कर सकते हो। अपने को नम्र, मृदुभाषी और सहनशील बनाते हुए उन्नति कर सकते हो अतएव उस मानव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करो जिसने अपनी सेवा करने का अवसर तुम्हें दिया है।

जो भगवान की सेवा करते हैं, वे सभी व्यक्ति समान हैं-बराबर हैं। यदि तुम भगवान के सच्चे भक्त बन आध्यात्मिकता प्राप्त करना चाहते हो, तो ऊँच-नीच का भाव त्याग दो। समस्त भेद-भावों को समूल भस्म कर दो और भगवान को सब में देखो। विशुद्ध-प्रेम, क्षमा, सम-दृष्टि, सहनशीलता, नम्रता, मधुरता अपने को सबसे छोटा समझने के भावों की वृद्धि करो। सबसे मिलो। सबमें एकत्व स्थापित करो। और इस प्रकार अपना मानव जीवन सार्थक करो।

कर्म योग का अभ्यास साधक के मन को आत्म-ज्ञान प्राप्ति के योग्य बनाता है। इससे वह वेदान्त सीखने का अधिकारी बन सकता है। अज्ञानी-पुरुष बिना कर्म योग की प्रारम्भिक शिक्षा और अभ्यास के एकदम ज्ञान-योग के अभ्यास पर कूद पड़ते हैं। इसी से वे यथार्थ सत्य की प्राप्ति में प्रायः असफल रहते हैं। इससे प्रतीत होता कि अभी उनके मस्तिष्क में विकार और अशुद्धियां मौजूद हैं। उनका मन अच्छी और बुरी चाहनाओं से भरा है। वे केवल ब्रह्म की चर्चा मात्र करते हैं। वे अक्सर व्यर्थ के वाद-विवाद, वार्ता और निरर्थक-कथनोपकथन में पड़ जाते हैं। जो निरे शुष्क, कभी न समाप्त होने वाले और निष्फल हैं। उनका दार्शनिक-ज्ञान उनके ओठों तक ही सीमित है। दूसरे शब्दों में यदि उनको वाक्-वेदान्ती कह दिया जाय, तो कोई अत्योक्ति न होगी। जिसकी जरूरत है, वह है क्रियात्मक वेदान्त, जो आत्म-भाव से और निस्वार्थ रूप से मानव समाज तथा देश की किसी न किसी रूप में अथक सेवा की जाय। स्थायी और अस्थायी का अन्तर सीखो। उस परमात्मा को समस्त जीवों में, सभी पदार्थों में देखो। नाम और रूप की परवाह मत करो। वे तो अनेक हैं, उसके समझने में न फंसो। ऐसा अनुभव करो कि कहीं भी केवल एक ब्रह्म,

अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जो भी शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि तुम्हारे पास है उसमें भाग लो। इस प्रकार सबमें भगवत् भाव ही समझ कर सब की सेवा करो।

ऐसा अनुभव करो जब तुम दूसरों की सेवा करते हो, तो तुम अपनी ही आत्मा की सेवा कर रहे हो। अपने ही समान अपने पड़ौसियों को प्रेम करो। सभी भेद-भावनाओं को दूर हटा दो। ऐसे विचार जो मानव को मानव से पृथक समझें, उन को चित्त में आने से सावधानी पूर्वक रोको। सब से मिलो, सबको गले लगाओ। उस परब्रह्म को निराकार एवं निर्विकार और स्त्री पुरुष में समानत्व स्थिति समझ कर अपने मन से भेद-भाव दूर कर दो। जब तुम कर्म करो तब मन को ब्रह्म में लीन करदो। यही क्रियात्मक वेदान्त है। यही समस्त उपनिषदों का सार तथा सन्त-महात्माओं के उपदेशों का गूढ तत्व है। यही आन्तरिक-आत्मा का जीवन-ध्येय है। अपने दैनिक जीवन में इन बातों का खूब अभ्यास करो। तब तुम निश्चय ही एक सफल योगी और जीवन्मुक्त बन सकोगे।

देना सीखो। दान में अपार प्रसन्नता होती है। इसे बहुत कम लोग समझ पाते हैं, भगवत् इच्छा पर अपने को उत्सर्ग करना सीखो। आत्म शरण गति में अपार प्रसन्नता होती है। बहुत ही कम इसे जानते हैं। पहिचानना सीखो। असत्य और सत्य के भेद को समझो। बहुत कम लोग इस अन्तर को जानने की चेष्टा करते हैं।

ऐसे लोग जो पीडितों के प्रति सच्ची हमदर्दी रखते हों, जो उनके दुःख का अनुभव करते हों, बहुत कम पाये जाते हैं। दुनियां ऐसे लोगों से भरी है, जो मौखिक सहानुभूति और दिखावटी हमदर्दी रखते हैं। निश्चित और वास्तविक हमदर्दी वाले तुरन्त ही पीडितों की सहानुभूति प्रकट कर उनकी सहायता में क्रियात्मक रूप से जुट पडते हैं। उन का दिल बडा ही मुलायम होता है। पीडितों के कोई - को वे सहन नहीं कर पाते। यदि किसी निरीह आज यह ...न्तिक क्लेश में वे देखते हैं, तो देखते ही कपिल का सांख्

उनका दिल पिघल जाता है। जो दिखावटी सहानुभूति वाले होते हैं, वे एक सच्चे पीडित को देखने पर कम द्रवीभूत होते हैं और अपने पास से कुछ खर्च करने या देने में तरह तरह के बहाने बनाते हुए हिचकते हैं। ऐसे लोग कंजूस होते हैं। मौखिक हमदर्दी वाले फिर भी इन कंजूसों और संग दिल वालों से बहतर हैं, कारण कि वे सुधारे जा सकते हैं। मौखिक सहानुभूति कभी असली हमदर्दी में भी चेष्टा करके बदली जा सकती है। अधिक अभ्यास और पीड़ितों को अधिक देखने से उनके मन पर असर हो सकता है।

अपने काम में सदैव लगे रहो। पूरे मन, मस्तिष्क और आत्मा से कर्म करो। फल की कभी परवाह न करो। सफलता या असफलता का कभी विचार मत करो। भूत (बीते हुए) का ध्यान न करो। पूर्ण-विश्वास रक्खो और आशावादी बन कर कर्म में रत रहो। आत्म निर्भरता का अभ्यास करो। सदैव प्रसन्न चित्त रहो। सधा हुआ मन रक्खो। कर्म, केवल कर्म, करने के ध्येय से ही करो। हिम्मत और जवांमर्दी रक्खो। तुम हर काम में निश्चय ही सफल होगे। यही सफलता का मूल सिद्धान्त है।

प्रेम का दीपक अपने हृदय में जलाओ। सभी को प्रेम करो। अपने प्रेम का पात्र जीवमात्र को समझो। विश्व-प्रेम का पाठ पढ़ो। समस्त-मानव समाज को अपने हृदय में स्थान दो। सबको छाती से लगाओ। सबसे सच्चा प्रेम, आन्तरिक प्यार करो। याद रक्खो प्रेम ही वह दैवी-औषधि है, जो तुरन्त ही असर करता है। हर काम में विशुद्ध प्रेम प्रकट करो। मक्कारी, लोभ, लालच, स्वार्थ, धूर्तता आदि को त्याग दो, दूर कर दो। ध्यान रक्खो कि, केवल लगातार महरबानी के कामों का अभ्यास करो। घृणा, क्रोध, द्वेष आदि दुर्गुण भी बराबर प्रेम-पूर्वक सेवा-कार्यों में लगे रहने से छूट जाते हैं। जब तुम दूसरों पर महरबानी के काम करोगे, तो तुम अपने में अधिक बल, ज्यादा खुशी तथा बेहद संतोष पाओगे, तुम्हें सभी प्यार करने लगेंगे। तुम

सबके दिलों में बैठ जाओगे सबके प्यारे बन जाओगे। दया के कार्य, नम्र-सेवा भाव और पीड़ितों की सहायता-सहानुभूति से तुम्हारा दिल शुद्ध, कोमल, दयावान, मधुर, नम्र, बन जायगा, जिससे तुम दैवी-ज्योति पाकर एक सफल साधक बन सकोगे। तुम्हारा मन भगवान के चरण कमल में लीन होगा और तुम्हारा जीवन धन्य हो जायगा।

सब के साथ प्रेम का वर्त्तव करो। समानता का व्यवहार करो। सभी को हृदय से चाहते हुए गले लगाओ। सब की सेवा करो तथा सब से प्यार करो। समस्त मानव समाज के दिलों में अपनी प्रेमपूर्ण अनवरत सेवा द्वारा जगह प्राप्त करो निस्वार्थ सेवा ही उन्नति का एकमात्र साधन है। इसे अपने जीवन का ध्येय समझो। इसी से तुम भगवत्प्राप्ति कर सकते हो। इसी से तुम्हारा जीवन आदर्श बन सकता है। यह कर्म योग की साधना है और एक सच्चे कर्म-योगी को यही एक मात्र अपना सन्देश है।

भगवान् तुम में सेवा करने की शक्ति दें, प्रेम करने का दिल दें और सच्ची हमदर्दी प्रकट करने का साधन प्रदान करें, जिससे तुम कर्म-योगी बन कर अपना और समस्त मानव समाज का कल्याण कर सको।

पाप से घृणा करो, असंयम से द्वेष करो, दुष्ट आचरणों से वैर करो, कुविचारों का अपमान करो और अन्याय से लड़ पड़ो। जिनमें यह दोष हों उनसे अलग रहो, किसी भी व्यक्ति से दुर्भाव न रखो।

× × ×

दूसरों की अवनति करके, दूसरों की बुराई करके आप अपनी उन्नति या भलाई करने में समर्थ नहीं हो सकते। आपकी उन्नति उन्हीं कार्यों द्वारा होनी सम्भव है, जिनमें दूसरों की भी उन्नति होती हो।

× × ×

आदतें बनाई जाती हैं।

बुद्धि को बनाना जिस प्रकार हमारे हाथ में है, उसी प्रकार मनोविकारों का भी बनाना हमारे हाथ में है। मनोविकार बुरे और भले दोनों हैं। जिनका जिस प्रकार विकास करोगे, वे उस प्रकार बन जावेंगे। शराब की दुकान देख कर शराबी से जिस प्रकार वहां गये बिना नहीं रहा जाता, उसी प्रकार यह भी आदत हो सकती है कि किसी की बुरी दशा देख कर उसकी स्थिति पर दया अवश्य उत्पन्न हो। दया करने से दया उत्पन्न होती है, हिंसा करने से हिंसा की प्रवृत्ति होती है। कोई मनोविकार ऐसा नहीं जो अभ्यास के, आदत के अधीन नहीं हो सकता पहले-पहल वे स्वाभाविक तथा उत्पन्न होते हैं, पर आगे उन्हें बढ़ने देना या न बढने देना मनुष्य पर अवलम्बित है। आगे की बातों के लिए प्रकृति जवाबदार नहीं। उसके लिये हम ही जवाबदार हैं। कि किसी वस्तु या कल्पना से हमारे मन में विशिष्ट प्रकार का विकार उत्पन्न होता है। आदत से सब कुछ हो सकता है।

यह आदतों पर ही सब कुछ निर्भर है और आदतें मनुष्य के हाथ की बात हैं, तो आदतों के कुछ नियम भी जान लेना आवश्यक है। सबसे पहले यह ख्याल रखना चाहिये कि यदि कोई नई आदत डालनी हो या कोई आदत छोड़नी हो तो उसके लिए तुम्हें अत्यन्त निश्चयपूर्वक मन की सब शक्ति लगा अच्छी आदतें डालने का प्रयत्न करना चाहिए।

दुख का सबसे बड़ा और असली लाभ यह है कि वह मनुष्य को शुद्ध एवं पवित्र बना देता है और बहुमूल्य अनुभव प्रदान करता है। × ×

बड़े बनने का शौक रखने वाले इस दुनियां में बहुत कम हैं। अधिकांश लोग बड़े बनने के शौक का शौक रखते हैं। × ×

केवल मंगलके लिये ही बोलिये

(श्रीलावेल फिल्मोर)

जो भोजन हम मुँहके भीतर ले जाते हैं, वही हमारा सत्वांश (शरीरका हिस्सा) बनता है। थाली में बचा रह जाने वाला अन्न हमारा सत्वांश नहीं बनता। यही दशा शब्दों की भी है। जिनको हम अपने मुखमें स्थान देते हैं, वे हमारे सत्वांश बन जाते हैं और जिनको हम नहीं दुहराते, वे सत्वांश नहीं बनते।

किसीकी निन्दा करने के लिये हमें अपशब्दोंको मुँहमें स्थान देना ही पड़ेगा, और ऐसा करने पर वे हमारे सत्वांश बन जायँगे। हम बहुधा यह सोचते हैं कि अपराधियों की उचित आलोचना करके हम न्यायका समर्थन करते हैं, पर वास्तव में घृणा और लज्जा के शब्दों को जिह्वा पर लाकर हम उन्हें अपने मनमें स्थान देते हैं और फिर उनके द्वारा हमारे सुख और शान्ति पर आघात होता है। ऐसे शब्द हमारे ध्यान को उन रचनात्मक विधियोंसे दूर हटा देते हैं, जिनके प्रयोग से अपराध करने वालों का सुधार सम्भव होता। हमें यह याद रखना चाहिये कि हम जिन अपशब्दोंका उच्चारण करते हैं, वे हमारे ही मुखोंमें रह जाते हैं, अपराधीका उनसे जरा भी सुधार नहीं होता।

ऐसे अवसर भी आ सकते हैं, जब हमको पापके विरोधमें आवाज उठानी ही चाहिये, पर साधारणतया ऐसा करना विषाक्त शब्दोंको अपने मुखोंमें ले जाकर अपनी ही हानि करना है। दोषका परिहार इससे कुछ होता नहीं। निषिद्ध वाक्योंके विक्षुब्ध सागरमें अपनी शब्दावलीकी धारा प्रवाहित करके हम संसारकी अशान्तिको और भी बढ़ा देते हैं। जनताकी कुभावनाओंके शिकार किसी भी पुरुषके छिद्रान्वेषण, दोषारोपण और कोसनेमें सहयोग देकर न तो हम अपना ही भला करते हैं और न संसारकी ही अवस्थाका सुधार करते हैं। उलटे विषमय शब्दोंकी भारी खुराक पेटमें भरकर हम अपने को विषमताके गहरे सागर में डुबो देते हैं।

विषमालोचना और अनुदार उद्गारोंकी बोतल खोल देने के बाद आकाश में अँधेरा छाया हुआ दीखने लगता है और थोड़ी देर के लिये जीवन का सात्विक आनन्द विषादके बादलों से ढक जाता है। मूर्खता के शब्दों का उच्चारण करके हम अपने आपको बेच देते हैं और बदले में 'संसार की हालत बहुत बुरी है और भगवान् हम लोगों को भूल-से गये हैं' ऐसे असद्विचारों को हृदय में जगह देते हैं। और जिन पर दोषारोपण करते हैं, उनका हमारे द्वारा कोई नैतिक सुधार भी नहीं होता।

हमारी यह इच्छा होनी चाहिये कि हम भूल करने वालों को उनकी कठिनाइयों से उबारें, परन्तु उन पर निषिद्ध वाक्यों का खौलता कड़ाहा उलट कर हम ऐसा नहीं कर सकते। उनको पददलित करने के बजाय हमें उनको उठाने की कला सीखनी चाहिये।

प्रत्येक बाह्य परिस्थिति का जन्म पहले मनमें होता है। बाह्य जगत से यदि बुराई को हम सदा के लिये उखाड़ फेंकना चाहते हैं तो हमें इसके लिये पहले मनमें ही बुराई की जड़ को खोद डालना चाहिये। कठोर शब्दों और आघातों से न तो वैमनस्य मिटता है और न राक्षसों में देवत्व की संस्थापना होती है। उत्तमता की ओर बढ़ने वाले प्रत्येक पगकी छाप पहले हृदय और मन पर पड़नी चाहिये। आलोचनापूर्ण अथवा चोट पहुंचाने वाले शब्दों की अपेक्षा मधुर शब्द हृदय पर अधिक प्रभाव डालते हैं। बाह्य जगत् की अव्यवस्था की जड़ मानस जगत् की अव्यवस्था में रहती है। अतः पहले मानस क्षेत्र में समता स्थापित होनी चाहिये, इसलिये विरोधभरे और कड़ुवे शब्दों से विषमता का कभी नाश हो ही नहीं सकता।

यह याद रखना चाहिये कि मुँह में लाये हुए उत्तम शब्द जीवन में सुख और समृद्धि लाते हैं एवं हिंसात्मक और अप्रिय शब्दों से अव्यवस्था उत्पन्न होती है। क्रोधाकुल शब्दों से हमारी पाचन-क्रियामें

बाधा पड़ती है तथा शरीर के अन्य व्यापारों में भी उथल-पुथल मच जाती है। वाग्बाणों की वर्षा करके अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने के बदले हम उल्टे अपनी अधिक हानि ही करते हैं।

आज के संसार को जितनी उत्तम उत्साहवर्द्धक शब्दों की आवश्यकता है, उतनी और किसी वस्तु की नहीं। इन सत् शब्दों का उच्चारण कौन करेगा? आप-हमसे बढ़कर अच्छा कोई नहीं कर सकता। प्रेम, सद्भावना, क्षमा इत्यादि से पूर्ण उत्तम शब्दों का प्रयोग करके विश्व में शान्ति स्थापित करने और मनुष्यों में सद्भावना की वृद्धि करने में अपना हाथ बँटाने का आज अद्भुत सुअवसर प्राप्त है। विश्व में शान्ति और प्राणियों में सद्भावना स्थापित करने के लिये भगवान् की दिव्य प्रार्थनाओं में सहयोग देना चाहिये न कि किसीको कष्ट पहुँचा कर संसार की अशान्ति को और बढ़ाना।

आज ऐसे नर-नारियों की आवश्यकता है, जिनको भगवान् की कृपालुता पर इतना विश्वास हो कि वे शान्त रहकर जीवों को मुक्त करने की भगवान् की क्रिया को देख-समझ सकें और फिर लोगों के सामने उसकी घोषणा करें। जो लोग ऐसा करेंगे, वे लोग बिना इसका पुरस्कार पाये नहीं रहेंगे, क्योंकि आशीर्वाद प्रदान करके वे स्वयं आशीर्वाद प्राप्त करेंगे।

मनुष्य केवल भौतिक आहार पर ही निर्भर नहीं रह सकता। सत्यरूप में जीवित रहने के लिये उसे उन शब्दों को भी अपने भीतर ले जाना होगा, जो स्वयं भगवान् के मुखारविन्द से निकलते हैं।

भौतिक जीवन की पाषाणमयी कठोरताओं पर हम अपना जीवन निर्भर करने की चेष्टा कर रहे हैं। पर पाप की आलोचना करने वाले शब्दों में कोई पोषणतत्व नहीं है। ऐसे आहार पर निर्भर रहकर हमारा आत्मा भूखों मर जायगा। हमको सच्ची पुष्टि पहुँचाने वाला आहार तो ईश्वर की कल्याणमयी वाणी से प्राप्त होता है, जो सत्य और धर्म से ओतप्रोत है। ईश्वर की सृष्टि में सब अच्छे हैं और जब हम उसकी कल्याणमयी वाणी का उच्चारण करते हैं, तभी जीवन की वास्तविक खूराक ग्रहण करते हैं और जब असली खूराक हमें मिल सकती है तो फिर पत्थरों (कठोरताओं) पर क्यों निर्भर रहें।

पत्थरों को खाकर कोई बढ़ नहीं सकता, फल-फूल नहीं सकता। इसी तरह कठोर शब्दों में कोई बढ़ नहीं सकता, फल-फूल नहीं सकता। ईश्वर का प्रेम, जीवन और उनकी वास्तविकता ही जीवन की असली खूराक है, भगवान् की मङ्गलमयी वाणी सुनिये और उससे शक्ति एवं जीवन प्राप्त कीजिये। केवल उनके मङ्गलमय शब्दों को ही अपने मुख में धारण कीजिये। अपनी बातचीत में केवल उन्हीं शब्दों का प्रयोग कीजिये, जिनमें आत्मा के निर्माण-परक तत्व भरे हैं। अपनी वाणी को ऐसी मङ्गल-मयी बनाइये कि जिससे भागवती शान्ति की संस्थापना हो और जगत् में उसीका प्रसार हो।

अतः आपको जब कुछ बोलना हो तो केवल मङ्गल के लिये ही बोलिये। —कल्याण

सच्ची सौन्दर्योपासना।

(प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

सत्यसेवन तथा सदाचार-सम्पन्नता के मध्य में सौन्दर्योपासना नामक ध्येय का स्थान है। सौन्दर्योपासना करने का अधिकार बुद्धि और अन्तः-करण दोनों को समान रूप से प्राप्त है। युग की मांग यह है कि सत्य तथा सदाचार के साथ साथ युवक सौंदर्य को भी अपने ध्येय में स्थान दें।

सौंदर्योपासक भलाइयों के सौंदर्य को समझता है और उसे अपने दैनिक तथा व्यवहारिक जीवन में उस सौंदर्य को प्रत्यक्ष करता है। सच्ची सौंदर्यो-पासना में सभी कुछ आ जाता है—शील, चरित्र, सुरुचि। जो अश्लील है, वह कुरूप है। अतः उसका बहिष्कार होना चाहिये। इसके विपरीत जो शील-युक्त एवं संयत है, सदाचार तथा चरित्र को उज्ज्वल करने वाली है, वह सुन्दर है। वह आदमी सुन्दर है जो सदा सर्वदा शुभ्र हितैषी एवं उत्तमोत्तम

विचारों में मग्न रहता है, सात्विक कार्य करता तथा सात्विक वाणी का उच्चारण करता है, पवित्र स्थानों में रमण करता तथा दूसरों से पवित्र व्यवहार करता है, जिसकी मनोवृत्तियां सदैव पवित्रता की ओर उन्मुख रहती हैं। चरित्र की बुनियाद सौंदर्य पर कायम करनी चाहिये किन्तु यह सौंदर्य आन्तरिक सौंदर्य होना चाहिये। सौंदर्य अच्छाइयों को स्वभावतः देखता है, अच्छाइयों का आदर करता है और अच्छाइयों में जीवन-क्रम का निर्माण करता है।

सौंदय का अर्थ शारीरिक बनाव शृंगार, क्रीम, पाउडर, गंदागायन, युवतियों का नाच, मद्यपान, व्यभिचार नहीं। ऐसा सोचना सौंदर्य का उपहास करना है। सौंदर्य के नाम पर दानवता का प्रचार करना है। सौंदर्य का यह बड़ा गन्दा स्वांग है। जिनके मन में वासना का भयानक नृत्य है, इच्छा की उदंडता है, व्यभिचारी प्रवृत्तियों का नर्क है, वह बाहर से चिकना चुपड़ा सुन्दर आकर्षक होते हुए भी अपरिमार्जित तथा अपरिपक्व है।

सच्चे सौंदर्य का पारखी—

एक बार का वृतान्त है कि महापुरुष ईसा अपने कुछ शिष्यों सहित वायु सेवनार्थ जा रहे थे। मार्ग में एक स्थान से घृणित बदबू आई। शिष्यों नाक में कपड़ा लगा लिया। कुछ चलने के पश्चात् मार्ग में एक मरा हुआ कुत्ता सड़क पर पड़ा हुआ दृष्टिगोचर हुआ। उस पर मक्खियां भिनक रहीं थी, लहू बह रहा था पास से निकलते हुए भय प्रतीत होता था। शिष्य घृणासूचक शब्दों का उच्चारण करते हुए एक ओर को निकलने लगे किन्तु महात्मा ईसा रुक गए। उन्होंने बड़ी ममता से मृत कुत्ते का हाथों में उठाया। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। उन्होंने बड़ी ममता से कुत्ते को सड़क के एक किनारे लेटा दिया और बोले—"कैसे सुन्दर हैं इसके दांत!"

ईसा सच्चे अर्थों में सौंदर्योपासक थे। वे सौंदर्य को प्रमुख स्थान देते थे। उनकी सूक्ष्म दृष्टि में सौंदर्य ही सदाचार का मूल था। अपने दैनिक जीवन में हमें सौंदर्य को प्रमुख स्थान देना चाहिये।

सौंदर्य के दो प्रकार—

सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर दो प्रकार का सौंदर्य होता है। वाह्य सौंदर्य, दूसरा आन्तरिक सौंदर्य। हम वाह्य सौंदर्य को बुरा नहीं कहते। हमें चाहिये कि हम शरीर से साफ, सुन्दर तथा आकर्षक बनें, अपना गृहस्वच्छ तथा सुन्दर रक्खें, अपनी पत्नि, बालबच्चों को सुन्दर रक्खें, अपनी निजी वस्तुएं—उद्यान, कुण्ड, देवालय, विद्यालय, पुस्तकें, सभी स्थानों में सुन्दरता को प्रमुख स्थान दें। प्रत्येक मनुष्य तथा स्त्री की यह स्वभावतः इच्छा होती है कि मैं खूब सुन्दर लगूं। राष्ट्रों तथा संस्थाओं की भी यही बात है। हमारी पोशाक, बर्तन, शरीर सभी कुछ सुन्दर रहें पर यहीं सौंदर्योपासना की इतिश्री न हो जाय। यह तो सौंदर्योपासना का प्रारंभ है। यह तो पहला पाठ है। इस वाह्य सौंदर्य के पश्चात् दूसरी स्टेज आन्तरिक (आत्मिक) सौंदर्य की आती है। आन्तरिक सौंदय ही वास्तविक सौंदर्य है। यही ही सच्चा परिपक्व सौंदर्य है। सच्चे सौंदर्य पारखी को यहीं आकर रुकना चाहिये।

रस्किन नामक अंग्रेज लेखक ने सौंदर्योपासना पर बहुत लिखा है। रस्किन कहता है—"हम देखते हैं आजकल के युवक रसिकता की वृद्धि के लिए जितना प्रयत्न करते हैं, उतना शील संवर्धन के लिए नहीं करते। आजकल के स्त्री पुरुष चाहते हैं कि हम नाच सकें, गा सकें, अच्छे चित्रों पर अपनी राय दे सकें, शिल्पशास्त्र पर कुछ बोल सकें इत्यादि। उनकी यह चाह योग्य है किन्तु यदि उनमें केवल इतनी चाह ही है तो मैं कहूंगा कि उनकी शिक्षा अधूरी है। मैं चाहता हूँ कि इन कलाओं की आत्मा जो सदाचार सम्पन्नता है, उसकी ओर तरुण स्त्री पुरुषों का ध्यान आकर्षित करूं। जब तक मनुष्य को आन्तरिक सौंदर्य की प्रतीति नहीं हो जाती, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि उसका मन सुसंस्कृत हो गया है।"

वास्तव में बिना सदाचार की नींव के सौंदर्योपासना अग्नि से खिलवाड़ करना है। सदाचार सम्पन्नता सौंदर्योपासना का एक प्रकार है। ——

बुजदिली से हिन्सा अच्छी।

(महात्मागांधी)

मैं यह विश्वास जरूर रखता हूं कि अगर सिर्फ बुजदिली और हिंसा में से ही चुनाव करना करना हो तो मैं हिंसा को ही चुनने की सलाह दूंगा। मैं यह पसन्द करूंगा कि हिन्दुस्तान अपनी इज्जत बचाने के लिये हथियारों की मदद लें, बनिस्बत इसके कि वह कायरों की तरह खुद अपनी बे इज्जती का असहाय शिकार हो जाय या बना रहे। लेकिन मेरा विश्वास है कि अहिंसा हिंसा से कहीं ऊँची है, सजा की बनिस्बत माफी देना कहीं ज्यादा बहादुरी का काम है। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'। क्षमा से वीर की शोभा बढती है। लेकिन सजा न देना उसी हालत में क्षमा होती है जब सजा देने की ताकत हो। किसी असहाय व्यक्ति का यह कहना कि मैंने अपने से बलवान को क्षमा किया. कोई मानी नहीं रखता। जब एक चूहा बिल्ली को अपने शरीर के टुकड़े टुकड़े करने देता है तब वह बिल्ली को क्षमा नहीं करता। कोई यह न समझे कि मैं हवाई और खयाली आदमी हूँ। मैं तो असली आदर्शवादी होने का दावा करता हूँ अहिंसा धर्म महज ऋषि और महात्माओं के लिये ही नहीं है वह तो आम लोगों के लिये भी है। जैसे पशुओं की आत्मा सोती पड़ी रहती है और वह शारीरिक बल के अलावा और कानून को जानती ही नहीं। इन्सान का गौरव चाहता है कि वह ज्यादा ऊंचे कानून की ताकत आत्मा की ताकत के सामने सिर झुकाये।

इसी लिये मैंने हिन्दुस्तान के सामने आत्म त्याग का, अपनी कुरबानी का, पुराना नियम पेश करने की जुरत की है जिन ऋषियों ने हिंसा में से अहिंसा का नियम ढूढ़ निकाला वे न्यूटन से ज्यादा प्रतिभाशाली थे। वे खुद बहुत बड़े योद्धा थे। वे हथियार चलाना जानते थे लेकिन अपने अनुभव से उन्होंने उन्हें बेकार पाया और थकी हुई दुनियां को यह सिखाया कि उसका छुटकारा हिंसा के जरिये नहीं होगा बल्कि अहिंसा के जरिये होगा।

अपनी सक्रिय दशा में अहिंसा के मानी हैं जानबूझ कर तकलीफें उठाना उसके मानी यह नहीं हैं कि आप बुरा करने वाले की ख्वाहिस के सामने चुपचाप अपना सिर झुका दें, बल्कि उसके मानी यह हैं कि हम जालिम की ख्वाहिस के खिलाफ अपनी पूरी आत्मा को भिड़ादें। अपनी हस्ती के इस कानून के मुताबिक काम करते हुए, महज एक शख्स के लिये भी यह मुमकिन है कि वह अपनी इज्जत अपने मजहब और अपनी आत्मा को बचाने के लिये, किसी अन्यायी साम्राज्य की ताकत को ललकार दें और उसके साम्राज्य के पुनरुद्धार या पतन की नींव डाल दें।

और इसीलिये मैं हिन्दुस्तान से अहिंसा का रास्ता अख्तियार करने के लिये इसलिये नहीं कहता कि वह कमजोर है। मैं चाहता हूं कि वह अपनी ताकत और अपने बल भरोसे को जानते हुए अहिंसा पर अमल करे। मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान यह पहचानले कि उसके एक आत्मा है, जिसका नाश नहीं हो सकता और वह तमाम शारीरिक कमजोरियों पर फतह पा सकती है तमाम दुनियां के शारीरिक बलों का मुकाबला कर सकती है।

दुनियां में आजकल कमजोर आदमियों को रहने के लिये जगह नहीं है। मेरा शरीर भी एक बार कालेज में पढते हुए कमजोर होगया था। तब मैंने एक वर्ष तक कालेज जाना बन्द करके शरीर सुधारने की पूरी कोशिश की थी। तुम्हें चाहिये कि पहले शरीर को निरोगी और बलवान बनाओ क्योंकि शरीर रोगी और दुर्बल रखने के समान दूसरा कोई पाप नहीं है।

—लोकमान्य-तिलक,

× × ×

अपना सम्मान करो।

जितना आप अपनी योग्यता पर अविश्वास करेंगे, जितना आप भय और शङ्का को अपने हृदय में स्थान देंगे, उतने ही आप विजय से-सफलता से दूर रहेंगे। चाहे हमारा पथ कितना ही कंटकाकीर्ण और अन्धकारमय क्यों न हो, पर हमें चाहिये कि हम कभी अपने आत्म-विश्वास को—मानसिक धैर्य को तिलांजलि न दें।

हमारी शंकाएँ और भय जैसे दूसरों के विश्वास को नष्ट करते हैं वैसे कोई अन्य पदार्थ नहीं। बहुत से मनुष्यों की असफलता का कारण यह है कि वे अपने निराशाजनित भाव ही को प्रोत्साहन देते रहते हैं और अपने पास उठने बैठने वाले लोगों से ऐसी ही निराशा भय प्रेरणा किया करते हैं।

यदि तुम अपने को पतित समझोगे—यदि तुम समझोगे कि हम नाकुछ मनुष्य हैं—हमारा कोई महत्व नहीं—तो दुनियां तुम्हें ऐसा ही समझेगी, वह तुम्हारा कोई महत्व नहीं समझेगी। वह तुम्हारी आवाज की कुछ कीमत न गिनेगी।

मैंने कोई ऐसा आदमी नहीं देखा जिसने अपने आप को तुच्छ, हीन और बेकाम समझते हुए कोई महान कार्य किया हो। जिस योग्यता का हम अपने आपको समझेंगे। उतना ही महत्वपूर्ण काम कर सकेंगे। यदि आप बड़े बड़े पदार्थों की आशा करते हैं—उनकी मांग करते हैं और अपने मनोभाव को विशाल बनाए हुए हैं—तो आपको बड़ी ही ऊँचे दर्जे की सफलता प्राप्त होगी।

जैसे तुम अपने आपको गिनोगे, जैसे तुम्हें अपनी योग्यता पर विश्वास होगा, जैसे तुम्हें अपनी उन्नति का महत्व मालूम हो रहा होगा—तुम संसार के लिये अपने आपको जैसे उपयोगी और वजनदार गिनोगे, वैसा ही भाव तुम्हारे चेहरे पर और तुम्हारे आचार विचार पर दीखने लगेगा।

यदि तुम अपने आपको मामूली आदमी मानोगे तो तुम्हारे चेहरे पर भी ऐसा ही भाव दीखने लगेगा। यदि तुम अपने आप सम्मान न करोगे तो तुम्हारा चेहरा इस बात की गवाही दे देगा। यदि तुम अपने आपको गरीब और नाकुछ समझोगे। तो खूब समझ लो तुम्हारे चेहरे पर कभी भी भाग्यवानी की प्रभा न चमकेगी-गरीबी की ही झलक उस पर झलका करेगी। जो कुछ गुण तुम अपने आप में प्रकट करते हो उनका अंश उस प्रभाव में भी रहता है जो तुम दूसरों पर डालते हो।

जिन गुणों को आप प्राप्त करना चाहते हो उन्हीं गुणों को यदि आप अपने मानसिक भवन में पैदा करते रहोगे तो धीरे धीरे ये गुण आपके होने लगेंगे और इन का प्रकाश आपके चेहरे पर भी चमकने लगेगा। यदि आप चाहते हैं कि हमारे मुख मण्डल पर दिव्यता का भाव झलके तो पहले आप अपने हृदय में वैसे भावों को उत्पन्न कीजिये यदि आप चाहते हैं कि हमारे मुख-मण्डल और आचार-व्यवहार में उच्चता का भाव झलके तो इसके लिये आवश्यक है कि आप अपने विचारों में उच्चता लावें।

हमारे कार्य की नींव हमारे आत्म विश्वास पर लगी हुई है "हम कार्य करते हैं" इस विचार में बडी अद्भुत शक्ति भरी हुई है। जिस मनुष्य में पूरा आत्मविश्वास है वह इस तरह की गड़बड़ी में नहीं पड़ता कि मैं ठीक पथ पर हूँ कि नहीं, मुझ में कार्य सम्पादन की योग्यता है कि नहीं। उसे अपने भविष्य के लिये किसी प्रकार की चिन्ता नहीं उठती।

जिस मनुष्य ने कभी प्रेम नहीं किया, वह मनुष्य कदापि ईश्वरानुभव नहीं कर सकता। यह एक तथ्य है। —स्वामी-रामतीर्थ।

× × ×

दया के कामों में मनुष्यों को ईसाई होना चाहिये। कडाई के साथ वाह्य विधिको ठीक ठीक पालन करने में मुसलमान और सब प्राणी मात्र के विषय में दया करने में हिन्दू होना चाहिये।

× × —श्री रामकृष्ण परमहंस।

विचार शक्ति का महत्व।

(श्री० विश्वामित्र वर्मा)

विचार मनुष्य में स्वाभाविक है, विचार न हो तो हम पशु की श्रेणी में गिने जायं। हम देखते हैं कि जो लोग विचार हीन होते हैं उनमें मनुष्यत्व की गणना नहीं होती। विचारों का उद्गम मन में है। 'मन' हमें प्राप्त होने से ही हम मनुष्य कहाए। मन का काम है विचार करना या मनन करना। यदि हम में मन न हो, हम विचार न करें तो हम मनुष्य नहीं। सारा मानव संसार विचार करता है, बोलता है, काम करता है और अनुभव करता है पर बहुत से लोग बड़े बड़े विद्वान् तक यह नहीं जानते कि सबका कारण 'मन' है। अज्ञात रूप से विचार चलते रहते हैं—उसी के कारण वे बनते बिगड़ते हैं फिर भी कहते हैं कि हमको विचार नहीं आते या हमने बिना विचारे काम कर लिया आदि—तथा हमको विचार शक्ति का रहस्य नहीं मालूम। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से उनके जीवन का या संसार में किसी भी कार्य की जड़ देखी जाय तो मालूम होता है कि कोई भी कार्य बाहर दृश्य स्थूल जगत् में होने के पहले वह हमारे मानसिक जगत् में तैयार हो जाता है—ऐसा क्रम अनादि काल से ही चला आता है—जो संबंध बीज और वृक्ष का है वही संबंध हमारे विचारों और कार्यों में है। हम विचार करते हैं फिर काम करते हैं—पर हमें यह नहीं मालूम कि यह कार्य हमारे विचारों का परिणाम है। हमें जो सुख दुःख आदि प्राप्त होते हैं उसका कारण हम बाहर के पदार्थों को समझते हैं—पर बाहर नहीं—यह हमारी केवल कल्पना है। एक ही वस्तु आज हमें अप्रिय है, कल वह प्रिय हो जाती है। इतना नहीं—हम जैसा विचार उस वस्तु के विषय में करेंगे वैसी ही वह हमको भासेगी। अच्छी और बुरी बातें सब हमारे मन में—हममें ही उत्पन्न होती हैं।

विचार के बिना सृष्टि का कोई भी कार्य एक क्षणभर के लिये भी आगे नहीं बढ़ सकता। हमारे प्राचीन ऋषि महात्माओं ने विचार शक्ति की जो महिमा गाई है उसका महत्व अब पाश्चात्य लोगों को भी विदित होने लगा है। जड़ शक्तियों के साथ वे विचारों की प्रचण्ड शक्तियों का भी अनुभव करने लगे हैं। वे यह मानने लगे हैं कि मनुष्य अपने विचारों का ही बना हुआ है। मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा ही वह हो जाता है।

यदि मनुष्य अच्छा विचार करे तो वह अच्छा, और बुरा विचार करे तो बुरा बन जाता है—मनुष्य विचारों का पुतला है। मनुष्य में मन का अस्तित्व होने से ही उसे रोग, शोक, भय, दुःख, सुख, मित्र, शत्रु, अच्छा, बुरा आदि भासता है। जो चीजें हमारे उपयोग की हैं, जिनसे हमारा स्वार्थ सिद्ध होता है, जो वस्तुएं, प्रसंग व परिस्थितियां हमारे अनुकूल हैं उन्हें ही हम अच्छा कहते हैं—बाकी अन्य वस्तुएं सब बुरी हैं। पर हम यह नहीं जानते कि अच्छा-बुरा आदि सब पहले हममें ही उत्पन्न हुआ। यदि हमने कोई वस्तु देखी—उसके विषय में हमने अपनी रुचि के अनुसार अच्छी या बुरी कहदी—परन्तु उस वस्तु में कोई परिवर्तन नहीं हुआ—जैसी पहले थी वैसी ही अब भी है—अतः परिवर्तन हममें ही—हमारे अच्छे व बुरे विचारों के कारण होता है।

सारा संसार हमारे विचारों पर ही स्थित है। हम उसे बुरा कहें या अच्छा कहें। विचार करने में हम स्वतंत्र हैं। यदि मनुष्य शोक, भय, व्यभिचार, ईर्षा, द्वेष, और घृणा इत्यादि के विचार करेगा तो निश्चय ही ये दुर्गुण उसमें बैठ जावेंगे—यदि विपरीत में परोपकार, निर्भयता, सत्यता, आदि के विचार करेगा तो उसमें इन गुणों का प्रादुर्भाव होने लगेगा—और साथ ही साथ उसमें एक आश्चर्य कारक शक्ति का संचार होने लगेगा।

विचारों का महत्व असाधारण है। विचारों के द्वारा ही मानव जीवन का निर्माण होता है। विचारों के कारण ही मनुष्य ऊंचा बढ़ता और नीचा गिरता है। इसलिए विचारों को अपनाते समय हमें बड़ी सतर्कता रखने की आवश्यकता है।

चाय मत पीजिए !

(डा० वीर भरती सिंह राणा)

चाय एक मादक अहितकर पेय है। मनुष्य शरीर को जिन चौदह द्रव्यों की आवश्यकता होती है उनमें से एक भी इसमें नहीं है। यह सम्पूर्ण विजातीय पेय है संसार के प्रसिद्ध विश्लेषकों का कथन है कि चाय में निम्न पदार्थों के भी अंश जाते हैं।

(१) टैनीन (Tannin) १६-४० प्र० श० से २७-१४ प्र० श० तक। (२) दाइन (Thine) २-२४ ,, ३-४२ प्रतिशत (३) सुगन्धित तेल (Essential-oil) ०-७६ से २-० प्रतिशत तक।

प्रथम तथा द्वितीय पदार्थ एक प्रकार के विष और तृतीय पदार्थ एक प्रकार का सुगन्धित तेल जो नींद का उडा देने का कार्य्य करता है इसमें पाये जाते हैं। इस के बाद भी वैज्ञानिकों ने इसकी अधिक खोज की है और बतलाया है, कि चाय की पत्ती हरी या सूखी लेकर एक प्लेटिनमूतार में लपेट कर बुनसन फ्लेम में जलाया जाय तो उसमें से पीली लपटें निकलेंगी उसे नीले रंग के चश्मे (शीशे) से देखने से बैजनी (Violet) रंग की लपटें दिखाई देंगी। वे पोटेशियम साल्ट के लक्षण हैं। थोडी सी बनी हुई चाय (बिना दूध शक्कर के) ले उसमें फैरिक क्लोराइड ५ ग्रेन मिलाने से काली स्याही की भांति रंग होजायेगा। जिससे ज्ञात होता है कि इसमें टेनिक एसिड विष है। इसी प्रकार बनी हुई चाय में तग हाइड्रो क्लोरिक एसिड चन्द बिन्दु तथा एक टुकडा पोटेसियम क्लोरेट को मिलाए उसमें से क्लोरिन गैस की गन्ध निकलेगी जो इसमें कैफीन विष का भी होना सिद्ध करता है। यह है संक्षेप में इसका रासायनिक विश्लेषण।

अनेक प्रसिद्ध डाक्टरों ने बतलाया है कि "चाय पीने, प्रत्यक्ष विष पीने में कोई अन्तर नहीं। फिर भी आप प्रति दिन पीते हुए स्वयं अपने स्वास्थ्य और अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहे हैं। हानि के विचार से शराब और चाय एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं, अन्तर इतना है कि एक महगी और दूरी सस्ती है। शराब, मदहोश बनाकर थोड़े समय के लिए दुःख हरती है, किन्तु चाय नींद को उडा देती है, अमूल्य जीवन तथा शरीर के स्वास्थ्य को नष्ट करने में यह शराब से अधिक भयकर है क्यों कि यह उससे सस्ती है इसका प्रचार स्थान स्थान पर है।

प्रायः जो महानुभाव चाय के अभ्यासी होते हैं उनकी क्षुधा नष्ट हो जाती है। चाय के अतिरिक्त और किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रह जाती; उन व्यक्तियों को जब तक चाय का प्याला नहीं मिल जाता, वे अपनी वास्तविक स्थिति में नहीं आपाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि चाय पीने से उनकी इन्द्रियां चाय के विष के वशीभूति हो हृदय की गति को निर्बल कर देती हैं, इसके बिना मन खिन्न, चिड़चिडा और मस्तिष्क कार्य रहित सा रहता है। इसका नशा लगभग शराब की भांति ही है, क्योंकि जब चाय का प्रभाव शरीर पर नहीं रहता तो फिर चाय पीने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार चाय का विष इन्द्रियों पर अप्रभावित प्रभाव डालकर स्फूर्ति पैदा करता है। परिणाम यह होता है कि शरीर की इन्द्रियां समय से पूर्वही नष्ट होजाती हैं। भारत के प्रसिद्ध डा० गोपाल भास्कर गडबुल लिखते हैं कि कर्ण इन्द्रिय और अन्य ज्ञान इन्द्रियों पर इसका बहुत बुरा प्रभाव होकर कुछ दिनों में पक्षाघात (लकवा) बहरापन आदि रोग होते दिमाग पाये जाते हैं और इसके प्रमाण भी हैं। फ्रान्स के प्रसिद्ध चिकित्सक ने कहा है कि जो व्यक्ति चाय पीते हैं उनके दिमाग की नशें निर्बल पड जाती हैं और कानों में सांय की ध्वनि आने लगती है। स्त्रियां जो मनुष्यों की अपेक्षा निर्बल होती हैं वे चाय की अभ्यासी होकर प्रायः ऐसे रोगों से अधिक ग्रस्त होजाती हैं।

डाक्टरों की सम्मति है कि चाय के सेवन करने से एक नवीन रोग यह उत्पन्न हुआ है कि पहले मस्तिष्क में एक प्रकार का वेग उठता है चेहरे का

रंग पीत वर्ण होता चला जाता है किन्तु चाय का पीने वाला उसकी चिन्ता नहीं करता है। कुछ समय के पश्चात आंतरिक तथा वाह्य कष्ट प्रकट होने लग जाते हैं। चित्त (मिजाज) शुष्क और मुखाकृति अधिक पीत-वर्ण हो जाती है। एक अन्य रोग जिसे चाहरम कहते हैं जिसमें एक प्रकार की कठिन मुर्छा आंतरिक इन्द्रियों के कार्य शिथिल, हाथ में कम्प और पाचन यन्त्र में पीडा हो जाती है जिसका फल यह होता है कि स्वाभाविक शिथिलता प्रकट होने लगती है। चाय का विष मूत्राशय (Bladder) पर अप्राकृतिक प्रभाव डालकर उसकी मूत्र रोक रखने की शक्ति कमकर देता है। जिससे उन्हें अधिक काम करते हुये बार-बार मूत्र त्याग करना पडता है और आग जलकर मूत्र में मूत्राम्ल Uric Acid कैलसियम आरजैलेट तथा अण्डलाल (Albumen) आदि जाने लग जाते हैं जिसमें अनेक मूत्र सम्बन्धी पीडायें उत्पन्न हो जाती हैं।

मद सेवियों की भांति चाय पीने वाले अपने कष्ट की चिकित्सा चाय को ही समझा करते हैं। परिणाम यह होता है कि रोग वृद्धि होती जाती है। डा० वेमार्ड ने बहुत से रोगियों की परीक्षा करके ये बातें सिद्ध की हैं कि चाय का विष शरीर में एकत्रित होता रहता है और नवयुवकों तथा दुर्बल शरीर वालों पर इसका बहुत हानिकर प्रभाव होता है। इसके सेवन से इसके विष युक्त प्रभाव के अनेक लक्षण—जैसे क्षुधा का नष्ट होना पाचन विकार, कोष्ठ बद्धता, हृदय धडकन, हृदय स्थान पर पीड़ा, जी मचलाना, कै, मुर्छा, दर्द, गठिया, वाय आदि रोग हो जाते हैं। चाय का जो प्रचार भारत में किया जा रहा है, यह उसी प्रकार है जैसे चीन में अफीम का किया गया था। स्वास्थ्य का महत्व समझने वाले हर एक विचार शील व्यक्ति को इस हानिकारक पेय से बचने के लिए सावधान होना चाहिए। जिन्हें आदत पड गई है और नहीं छोड सकते वे तुलसी, बनफसा, अदरख, मुनक्का ब्राह्मी, चकन, जैसी लाभदायक औषधियों का पानी में उबाल कर चाय का काम ले सकते हैं। ——

सुख की प्राप्ति के साधन

(डा० दुर्गाशंकरजी नागर)

सुख बाहर से प्राप्त नहीं होता, बल्कि अन्तःकरण की अनुकूल बुद्धि में ही वास्तविक सुख है। सुख की प्राप्ति भविष्य में होगी या भविष्य में अमुक पदार्थों की प्राप्ति होगी-इस भ्रान्ति युक्त कल्पना को अपने अन्तःकरण से दूर करदो। वर्तमान में किस बात का अभाव है कि तुम भविष्य की बाट जोह रहे हो? भविष्य का विचार भविष्य को सौंप दो, उसे वर्तमान के साथ मिश्रित मत करो।

आज जो तुम्हें सुख उपलब्ध हो रहा है, वही सर्वोत्तम है। सुख के अनुभव करने का यही राजमार्ग है।

तुम क्यों फिर इधर उधर अपने दुःख को दूर करने का उपाय सोचते फिरते हो? तुम भय से क्यों कांप रहे हो? क्रोध से क्यों तप रहे हो?

दुःख को दूसरों के पास जाकर रोने गाने से दूर नहीं कर सकते। दुःख के उद्गार संक्रामक रोग के समान फैलते हैं। तुम्हें, स्वयं अधिक दुःखी करते हैं और दूसरों को भी दुःख पहुँचाते हैं। मरण-पर्यन्त भी तुम दुःख की गाथा संसार को सुनाते रहोगे तो भी तुम्हारा दुःख रत्ती भर कम न होगा।

यदि तुमको दुःख और महान् विपत्ति का सामना करना पड़ रहा हो तो शान्ति से सहन करो, और उसके लिए परमात्मा का उपकार मानो। जगत के इतिहास में जो बड़े बड़े महान् कार्य हुए हैं, वे धन और सुख के परिणाम नहीं हैं। किन्तु दुःख विपत्ति और शोक के हैं।

भूत काल के भ्रान्तिमय दुःख, शोक, निराशा के लिए जरा भी पश्चाताप न करो। पश्चाताप और निराशा प्रकट करके जो तुम भूल सुधारना चाहते हो, वे विचार पुनः पुनः तुम्हारे मानसिक संग्रहालय में स्थान प्राप्त करेंगे। ऐसा करने से तुम पुनः उन विचारों को जाग्रत कर लोगे। इस लिए उनका विचार करना बिल्कुल छोड़ दो। ——

अर्थ-उपार्जन।

नीतिकार का बचन है कि—

बुभुक्षितैः व्याकरणं न भुज्यते।
पिपासितैः काव्य रसो न पीयते॥

अर्थात्—'भूखे व्यक्ति का व्याकरण के भोजन से काम नहीं चलता और न प्यासे की तृप्ति काव्य रस पीने से होती है।'

काव्य, व्याकरण, साहित्य, संगीत, कला, आदि की जीवन में निस्संदेह बहुत बड़ी आवश्यकता है, इनके बिना सरसता, कोमलता और मधुरता कायम नहीं रहती। यह होते हुए भी इन बौद्धिक व्यंजनों से पूर्व शारीरिक स्थिरता के उपकरण जुटाने की आवश्यकता होती है। जीवन को स्थिर रखने के लिए भोजन, वस्त्र, मकान, तथा सामाजिक सम्बन्धों को चलाने के लिए आवश्यक साधन सामिग्री की आवश्यकता है, यह सभी वस्तुऐं धन के ऊपर निर्भर हैं। पैसे के बिना उपरोक्त आवश्यकताओं में से एक की भी पूर्ति नहीं होती। इस युग में अर्थ के बिना जीवन धारण किये रहना भी कठिन है।

बौद्धिक उन्नति की ओर ध्यान देना जरूरी है, परमार्थिक धर्म संचय भी आवश्यक है, परन्तु इन दोनों से भी आरंभिक सीढ़ी जीवन रक्षा है। यदि भोजन की समुचित व्यवस्था न हो, शरीर रक्षा के आवश्यक उपकरण न हों तो मनुष्य निर्बल एवं अस्वस्थ होकर मृत्यु के मुख में जाने की तैयारी करने लगेगा। समाज में रह कर सम्मान सहित जीवन बिताने के लायक धन न हो तो चित्त में, आत्मग्लानि, अपमान, हीनता, दीनता, दुर्भाग्य, चिन्ता, ईर्षा, एवं घृणा के सत्यानासी भाव सदा जागते रहेंगे और अन्तकरण की कोमलता को निरन्तर जलाते रहेंगे। ऐसी दशा में न तो सच्ची बौद्धिक उन्नति हो सकती है और न अध्यात्मिक उन्नति। संगीत साहित्य एवं कला में चित्त कैसे जमेगा। चिन्ता निराशा और उद्विग्नता से बेचैन मन किन्हीं ललित कलाओं पर किस प्रकार एकाग्र होगा? शारीरिक स्थिरता के बिना दर्शन शास्त्र काव्य, एवं धार्मिक विवेचना में रुख किस प्रकार आयेगा?

एक नीति वचन है कि—"खाली बोरा सीधा खड़ा नहीं रहता।" बोरी अन्न, शकर आदि से भरी होगी वह सीधी खड़ी रहेगी, पर जिस बोरी में कुछ न भरा हो खाली होगी वह सीधी खड़ी न रह सकेगी, धरती पर गिर पड़ेगी। उसी मनुष्य की नैतिकता स्थिर रह सकती है जिसके पास जीवन निर्वाह के आवश्यक साधन मौजूद हैं। जो भूखा है, अभाव ग्रस्त है, दीन और दरिद्र है, वह कब तक धर्म पर स्थिर रहेगा? चोरी, बेईमानी, धोखेबाजी आदि की ओर उसकी प्रवृत्ति झुकेगी। जब नीति युक्त रीति से अर्थ व्यवस्था में मनुष्य समर्थ नहीं होता तो उसका मन अनीति की ओर मुड़ते देर नहीं लगती। अभाव और असुविधाओं से सताये हुए मनुष्य के लिए उच्च आदर्शों की ओर चलना कठिन है वह अनैतिकता के कुमार्ग की ओर आसानी से ढुलक सकता है।

उन्नति की ओर चलना ठीक है, हर मनुष्य को विभिन्न दिशाओं में जीवन को विकसित करना चाहिए। पर सब में पहले आर्थिक स्थिरता की ओर समुचित ध्यान देना चाहिए। क्योंकि उस पर ही शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता बहुत अंशों में निर्भर है। जब शरीर गत उद्विग्नताओं से निश्चिन्तता हो जाती है तब मन में अन्य दिशाओं की ओर प्रगति करने लायक स्फूर्ति उत्पन्न होती है। आवश्यक सुविधाओं के अभाव में भीतरी चेतना भी अनुत्साह एवं खिन्नता की दशा में पड़ी रहती है। स्वाध्याय के लिए पुस्तकें, सत्संग के लिए जाने को मार्गव्यय, देवता पर चढ़ाने के लिए भोग, गुरु, को देने के लिए दक्षिणा यह सब भी तो अर्थ साध्य ही है। कथा, कीर्त्तन, व्रत तीर्थ, दान, यज्ञ अनुष्ठान, ब्रह्मभोज, सभी के लिए तो धन चाहिए। उचित अवसर पर जब उत्तम कार्य करने के लिये पास में पैसा नहीं होता तो परमार्थ की वृत्तियां

संकुचित होकर मुरझा जाती है, । परमार्थ के पथ पर पैर बढाने योग साहस स्थिर नहीं वह पाता ।

इन सब बातों पर विचार करते हुए नीतिकार ने मनुष्य को सलाह दी है कि वह विकाश की प्रवृत्ति आरम्भ करते हुए धन उपार्जन की दिशा से आंखें न मूंद ले । जो इधर उपेक्षा करते हैं और केवल मात्र बौद्धिक उन्नति पर निर्भर रहना चाहते है उन्हें नीतिकार ने स्मरण दिलाया है कि—व्याकरण मे भूख और काव्य रस मे प्यास शान्त नहीं होती । जीवन निर्वाह के लिए अन्न जल की भी आवश्यकता है अन्य उन्नतियों के लिए आवश्यक सुविधा एवं प्रेरणा प्राप्त करने को अर्थ की जरूरत है सो उसका भी यथोचित ध्यान रखना चाहिए ।

अनीति से धन कमाना बुरा है, सम्पूर्ण शक्तियों को धन उपार्जन में ही लगाये रहना बुरा है, धन का अतिशय मोह, अहंकार, लालच बुरा है, धन के नशे में उचित अनुचित का विचार छोड देना बुरा है, परन्तु यह किसी भी प्रकार बुरा नहीं है कि जीवन निर्वाह की उचित आवश्यकताओं की पूर्ति को ईमानदारी और परिश्रम शीलता के साथ धन उपार्जन किया जाय । ऐसा उपार्जन उचित है, आवश्यक है. कर्तव्य है एवं जीवन को सुख शान्ति की ओर लेजाने वाला है ।

लाखों गूंगों के हृदय में जो ईश्वर विराजमान हैं मैं उसके सिवा अन्य किसी ईश्वर को नहीं मानता । वे इसकी सत्ता को नहीं जानते, मैं जानता हूं । और मैं इन लाखों की सेवा द्वारा उस ईश्वर की पूजा करता हूँ जो सत्य है अथवा उस सत्य की जो ईश्वर है ।

—महात्मा गांधी,

× × ×

मनुष्य को चमत्कारिक शक्तियां कठिन काम करने से प्राप्त नहीं होतीं बल्कि इस कारण प्राप्त होती हैं कि वह उन्हें शुद्ध हृदय से करता है ।

× × —रिचर्ड बी० ग्रेग ।

अच्छाइयां देखिये ।

(प्रोफेसर मोहनलाल वर्मा एम० ए०)

जैसा हम देखते सुनते या व्यवहार में लाते हैं, ठीक वैसा ही निर्माण हमारे अन्तःजगत् का होता है । जो जो वस्तुएं हम वाह्य जगत् में देखते हैं, हमारी अभिरुचि के अनुसार उनका प्रभाव पडता है । प्रत्येक अच्छी मालूम होने वाली प्रतिक्रिया से हमारे मन में एक ठीक सा मार्ग बनता है । क्रमशः वैसा ही करने से वह मानसिक मार्ग दृढ़ बनता जाता है । अन्तः में वह आदत बनकर ऐसा पक्का हो जाता है कि मनुष्य उसका क्रीतदास बना रहता है ।

जो व्यक्ति अच्छाइयां देखने की आदत बना लेता है उसके अन्तर्जगत् का निर्माण शील गुण, देवी तत्वों से बनता है । उसमें ईर्षा, द्वेष, स्वार्थ का गंध नहीं होती । सर्वत्र अच्छाइयां देखने से वह स्वयं शील गुणों का केन्द्र बन जाता है ।

अच्छाई एक प्रकार का पारस है । जिसके पास अच्छाई देखने का सद्गुण मौजूद है, वह पुरुष अपने चरित्र के प्रभाव से दुराचारी को भी सदाचारी बना देता है । उस केन्द्र से ऐसा विद्युत् प्रभाव प्रसारित होता है जिससे सर्वत्र सत्यता का प्रकाश लेता है । नैतिक माधुर्य जिस स्थान पर एकीभूत हो जाता है, उसी स्थान में समझ लो कि सच्चा माधुर्य तथा आत्मिक सौंदर्य विद्यमान है । अच्छाई देखने की आदत सौंदर्य रक्षा एवं शील रक्षा दोनों को समन्वय करने वाली है ।

जो व्यक्ति गंदगी और मैल देखता है, वह दुराचारी, कुरुप, विषयी और कुकर्मी बनता है । अच्छाई को मन में रोकने से अच्छाई की वृद्धि होती है । दुष्प्रवृत्ति को रोकने से हिंसा, मारना, पीटना,ठगना, अनुचित भोग विलास इत्यादि बढता है । यदि संसार में लोग नीर-क्षीर विवेक करने लगें और अपनी दुष्प्रवृत्तियों को निकाल दें, तो सतयुग आ सकता है और हम पुनः उन्नत हो सकते हैं ।

सती किसे कहते हैं ?

(श्रीमती, रत्नेश कुमारीजी नीरांजना)

जन साधारण का विश्वास है कि—"सती उसको कहना चाहिये जो मृत पति के साथ जल जाये" ये विश्वास ठीक भी हैं और नहीं भी। बिना सतीत्व के बलके जीवित जला नहीं जासकता अस्तु जलने वाली निस्सन्देह ही सती है पर जिनको संयोग नहीं हुआ उनमें भी थोडी बहुत सती स्त्रियां अवश्य होंगी अतएव सती की परिभाषा ये समझनी चाहिये। जो तम, मन तथा वचन से सत्य को ही ग्रहण किये रहे कोई भी बडा से बडा भय अथवा प्रलोभन उसे सत्य से डिगा न सके।

सत्य का मन वचन तथा कर्म से आचरण करने पर आत्म बल की ही प्राप्ति नहीं आत्म साक्षात्कार की भी शक्ति प्रभु कृपा से प्राप्त होती है और आत्म साक्षात्कार के पश्चात् संसार में किसी भी भय अथवा प्रलोभन का असतित्व ही नहीं रहता क्योंकि सारे भय अथवा प्रलोभन शरीर को ही सुख दुख देसकते हैं। जिसने शरीर से प्रथक अपने को जान लिया है सुख दुख उसे छू भी नहीं सकते वह तो अखण्ड आनन्द में मग्न रहती है संसार की कोई भी बडी से बडी शक्ति उसकी चित्त वृत्ति को तिल २ शरीर काट कर भी चंचल नहीं कर सकती!

सच्चा तो पति सारे संसार का एक प्रभु है क्योंकि वही शरण देने तथा रक्षा करने में पूर्ण समर्थ है अब रहा ये प्रश्न कि उसकी पूजा सांसारिक मनुष्य में ही क्यों करें? सो ये तो विवाद ग्रस्त प्रश्न है। जैसे साकार या निराकार किसी की उपासना क्यों न करो वह ईश्वरोपसना ही होगी वैसे ही जिसको विश्वपति का ज्ञान होगया है और जो उसमें अपनी आत्मा को अभिन्न करने का ज्ञान होगया है और जो उसमें अपनी आत्मा को अभिन्न करने के प्रयत्न में पूर्ण शक्ति से लगी हुई है वह किसी तरह भी अपने इस महान कार्य को क्यों न पूरा करे सतियों में उसकी गणना होगी।

शरीर और मन की निरोगता

(मास्टर चन्दनसिंह गहलोत, चंडावल)

जिसके शरीर, मन व आत्मा में किसी तरह का कोई भी रोग न हो, वह स्वस्थ है, निरोग है व तन्दुरुस्त है। एक मनुष्य मोटा तगडा या पहलवान तो दिखाई देता है परन्तु अगर उसमें शील, लज्जा, मधुर भाषण, दृढता, सरल स्वभाव, पवित्रता, सन्तोष, सुहृद्भाव, विनय, क्षमा, हृदय की शुद्धता, बड़ों की सेवा, इत्यादि मानसिक तन्दुरुस्ती के गुणों का अभाव है तो उसे, पूर्ण तन्दुरुस्त नहीं कहा जा सकता।

तन्दुरुस्त मन के जरिये ही अच्छे दांत, अच्छी दृष्टि, अच्छी भूख, अच्छी नींद, ठीक शौच, चौडी छाती, सीधी कमर, अपनी आयु के अनुसार दूर तक बोझा ले जाने की शक्ति, बिना थके लिखाई पढाई कर सकने की शक्ति, चुस्त बदन ठीक शरीर, भार, दिल, दिमाग, फेफड़े, जिगर और सन्तानोत्पादक अंगों के कार्य्य का ठीक होना, बुखार, खांसी, जुकाम, कब्जी और सिर दर्द, वगैरह का कभी न होकर शारीरिक तन्दुरुस्ती के श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति हो सकती है!

जब शारीरिक व मानसिक तन्दुरुस्ती प्राप्त हो गई तो फिर, आत्मिक उन्नति तो अत्यन्त ही सहज है। इसीलिये पूर्ण तन्दुरुस्ती प्राप्त करने से पहले, हमें अपने मन को तन्दुरुस्त बनाने की सर्वप्रथम कोशिश करनी चाहिये। शारीरिक व आत्मिक उन्नति की जड 'तन्दुरुस्त मन' ही पर अवलम्बित है। हमारे लोक व परलोक का बनना, बिगडना भी एक मात्र इसी पर टिका हुआ है।

प्रभु हम सबको पथ प्रदर्शन करें और चलने की शक्ति देवें। सतियों की यह जन्म भूमि एक बार फिर सतियों के पवित्र तेज से आलोकित हो उठे यही उस सर्वशक्तिमान सर्व सुहृद के पवित्र पाद पद्मों में सारे हृदय से साग्रह प्रार्थना है।

प्रेस फण्ड के लिए सात्विक सहायता।

अब थोड़े से पैसे की और कमी रह गई है। आशा है कि उदार स्वजनों की सहायता से शीघ्र ही यह कमी भी पूरी हो जायगी।

२१) श्री० मदनलाल व्रिजमोहनजी जलपाई गुडी
११) श्री० रामदीनजी अग्रवाल, जलपाई गुडी
१०) श्री० गोवर्धनलाल पुरोहित सवाई माधोपुर
१०) मा० रुद्रबहादुर श्रेष्ठ, नेपाल
५) वैद्य गरीबराम अग्रवाल, बिलासपुर
५) श्री० जयसिंहजी, पिसनहारिया
५) कस्तुरी टी० सिन्डीकेट, जलपाई गुडी
५) श्री० रामलालजी अग्रवाल जलपाई गुडी
५) श्री० रतनचन्द जालीरामजी जलपाई गुडी
५) श्री० नन्दलाल कीठानिया, जलपाई गुडी
५) श्री० अनन्तराम ननकीसाव, जूनाविलासपुर
५) श्री० हरिसहायजी विश्नोई जमींदार, अजीतमल
५) श्री० लक्ष्मीनारायणजी श्रीवास्तव वकील ककुआ,
५) श्री० कुलवन्तसिंह खन्ना, देहली
३॥) श्री० मानकचन्द न्यादरजी खरगोन
३॥) श्री० एन. सी. जोशी. खरगोन
३) श्री० राजेन्द्रप्रसादजी पाठक सेगांव
३) श्री० रामेश्वरलाल गुर्वाचार्य नेपाल
२॥) पं० हरिश्चन्द्र मिश्र शाहजहांपुर
२॥) श्री० रामायन समाज बहराइच
२) श्री० बालकृष्ण गुप्ता जूना विलासपुर
२) श्री० बालकृष्ण चंपालाल महाजन खरगोन
२) श्री० हरिसिंह पंचमसिंह सोगर, खरगोन
२) श्री० बिहारीलाल गंगाराम भावसार खरगोन
२) पं० क्षेमानन्द शर्मा, रानीखेत
२) पं० आशाराम शर्मा, अध्यापक, मलाजनी
२) श्री० जानकीप्रसाद अग्रवाल डुमरी
२) पं० रामेश्वरदयाल 'दिगधर' गोरमी
२) पं० पूरनचन्दजी राज्य ज्योतिषी खरियार
२) श्री० शिवसागर गुप्ता, खागा
२) श्री० उमेदसिंह मेडतिया, जोधपुर
२) श्री० राधाकृष्णजी बी. ए. पूना
२) पं० जनार्दन पाण्डेय शास्त्री, बनारस
२) श्री० तनसुखराम बालुराम चारघाट
२) लेडीडाक्टर कमलादेवीजी कांकेर स्टेट
२) पं० मालीराम शर्मा, खेतडी
२) श्री० कनकनन्दन जोशी नेपाल
२) वैद्य निरंजन गोविन्दजी नेपाल
१॥) सर्व हितैषी पुस्तकालय गंगापुर
१॥) पं० बालाप्रसाद त्रिपाठी जूनाविलासपुर
१॥) डाक्टर मनमोहनप्रसाद, बहरायच
१॥) श्री० रामशरनलाल निगम बहरायच
१॥) पं० बी. आर. तिवारी, पद्मपुरी आश्रम
१॥) श्री० देवकीप्रसाद अग्रवाल जलपाई गुडी
१) श्री० देवचरण जीतिवारी, जूनाबिलासपुर
१) श्री० यादवजी सरकानूनगो, खरगोन
१) श्री० नटवरलाल गोविन्द महाजन खरगोन
१) श्री० सदाशिव बोंदर जी भावसार, खरगोन
१) ला० मंगलप्रसाद निगम बहरायच
१) ला० बद्रीप्रसाद वैश्य बहरायच
१) ला० रामनरायन लाल वैश्य बहरायच
१) बा० गुरुशरनलाल श्रीवास्तव बहरायच
१) सेठ गंगाराम सोनापती बहरायच
१) पं० हरनारायणजी अध्यापक मलाजनी
१) पं० रामचन्दजी अध्यापक मलाजनी
१) ला० पूरनमलजी लरखौर
१) श्री० माताप्रसाद शिवहरे, गोरमी
१) श्री० रामकृष्ण वर्मा, लखनऊ
१) श्री० केशवप्रसाद श्रीवास्तव भीखमपुर
१) ठा० रामकरनसिंह वैद्य, जफरापुर
१) पं० मूलचन्द शर्मा, कामां
१) श्री० हनुमानप्रसाद गुप्ता, दमोह
१) मा० बद्रीकृष्ण श्रेष्ठ, नेपाल
१) श्री० शिवचन्द्र कटरिया रायपुर
१) श्री० सोहप्रसाद शर्मा रायपुर
१) श्री० घनाराम टेकसिंह रायपुर
१) श्री० जगतपालसिंहजी कुंभीपुर

शरीर को स्वस्थ रखिए।

(श्री ब्रह्मदत्त शर्मा आयुर्वेदालंकार)

पिचके हुए गाल, गढ़े में धँसी हुई आँखें, सफेद काले बालों से खिचडी बना हुआ सिर, हड्डियों पर मंढ़े चमड़े वाला शरीर लकड़ियों जैसी पतली टांगें, पीला हलदी जैसा या काला चेहरा, झुर्रीदार त्वचा, आंखों पर चश्मा, श्रीहीन-निस्तेज शरीर—यह है औसत ढांचा, जो आज बीसवीं सदी में शहरों के अन्दर देखने को मिलता है, सो भी तथा-कथित युवकों का, राष्ट्र के वीर सुपुत्रों का। पेट की हालत यह है कि जिगर-तिल्ली बढ़े हुए हैं, कब्ज या दस्तों के मारे पेट रूपी बक्स में परेशानी बनी ही रहती है, बवासीर के मस्सों से पाजामे की हालत तंग है। कभी सिर में दर्द है तो कभी चक्कर। कभी इस टांग में 'श्याटिक' का दर्द है तो कभी वह बांह सुन्न है। कभी खट्टे डकार और छाती की जलन के मारे परेशानी है तो कभी पेट में शूल से चुभने का दर्द। कभी मसूड़ों से खून निकल रहा है, तो कभी 'पायोरिया' की पूय। कभी दांत में कीड़ा लगा है तो कभी दांत-दर्द के मारे दुनियां टैट है और कभी किसी दांत का मसूडा सूजकर चेहरे पर भी सूजन झलक आई है। दांत या तो काली हपसी से मंढ़ गए हैं या पीले कीचड़ से लिथड़े हुए और या सारे ही काले पड गये हैं। पेट या तो बिलकुल ही पिचका हुआ है या मशक जैसी फूली तोंद है। छाती या तो बिलकुल पतली-सी डिब्बे जैसी या कबूतर जैसी है जिसमें से पसलियों की एक-एक नोंक और रेखा बखूबी झलक रही है या दो लोथड़े से छाती पर बिराज कर उसे बिल्कुल गोल बनाए हुए हैं। जरा-सा चलते ही टांगें दुखने लगती हैं, जरा-सा भार उठाते ही हांफना शुरू हो जाता है, थोड़ा सा काम करने में ही अँग दुखने लगता है, हलकी-सी धूप में ही आंखें चौंधिया जाती हैं। किसी सामान्य से भी कारण से नजाकत-भरा अकारण जीर्ण-शीर्ण शरीर चरमराने लगता है, ढह पड़ता है—मानो 'अँबर डंबर सांझ के बालू की-सी भीत' वाली बालू की दीवार हो। शरीर आ मन या तो शिमला-नैनीताल में अच्छा रह सकता है या विलायत में। यह है ग्राम-प्रधान भारत के औसत युवक की ओज रहित श्रीहीन निस्तेज शारीरिक अवस्था।

यह सब इसलिए है कि कष्ट-सहन के लिए आज हम अपने शरीर को अभ्यास नहीं डालते। सुख-दुःख शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वात्मक शारीरिक स्थितियों के प्रति अपने शरीर को हम तैयार नहीं करते। द्वन्द्वों से भरे इस जगत में कष्टमय (या कष्ट रूप में अनुभव होने वाली) अवस्थाओं की ओर से डर कर हम आंखें ही मींचे रहते हैं—ठीक वैसे ही जैसे कि बिल्ली को सामने देखकर कबूतर भय से अपनी ही आंखें मींचकर समझ लेता है कि वह बिल्ली की आंखों और पहुँच से ओझल हो गया। और इस अवस्था में भोगवाद के वातावरण में हमारा शरीर इतना कृश-निर्बल और नाजुक हो जाता है कि संसार के विषम-पथ में बड़ी जल्दी लड़खड़ाने लगता है जीवन की झंझाओं में कंपकंपा उठता है—पीपल के पत्ते की तरह, दुःखों और कष्टों की आंधियों से चरमरा कर गिरा पड़ता है घुन और दीमकों से खाए हुए सूखे ठूंठ की तरह और उसे हम उत्तेजना देते हैं चाय-कहवे तम्बाकू से या मद्य-मसाले—हॉर्लिक्स-ओवल्टीन आदि से। ये सभी चीजें यों तो वैसे ही विष हैं, पर इस प्रकार के शरीर पर वैसा ही घातक प्रभाव करती हैं जैसा थके हुए घोड़े पर चाबुकों की मार का होता है, और उस पर भी बड़े दुःख का विषय है कि हम समझते यही हैं कि इन पदार्थों से हम बड़ी ताजगी और शक्ति प्राप्त कर रहे हैं। परन्तु कितना विष इकट्ठा कर रहे हैं हम शरीर में!—यह पता तब चलता है जब पहले से धुंधला हमारा देहरूपी सूर्य अकाल में ही सन्ध्या-समुद्र में गोता लगाने की तैयारी कर चुकता है। कितनी अफसोसनाक हालत है यह हमारी! इससे छूटने का हर मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिए।

"अखण्ड-ज्योति" द्वारा प्रकाशित अमूल्य पुस्तकें।

यह बाजारू किताबें नहीं हैं। इनकी एक एक पंक्ति के पीछे लेखकों का गहरा अनुभव एवं अनुसंधान है। इतने गहन विषयों पर इतना सुलभ साहित्य अन्यत्र प्राप्त होना कठिन है। यह पुस्तकें पाठक की जीवन दिशा में उथल पुथल उत्पन कर देने की दैवी शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न हैं। इनमें जो पुस्तकें आपने अभी तक नहीं पढ़ीं उन्हें आज ही मंगा लीजिए।

१—मैं क्या हूं ?	।=)
—सूर्य चिकित्सा विज्ञान	।=)
—प्राण चिकित्सा विज्ञान	।=)
—परकाया प्रवेश	।=)
—स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या	।=)
—मानवीय विद्युत के चमत्कार	।=)
७—स्वरयोग से दिव्य ज्ञान	।=)
८—भोग में योग	।=)
—बुद्धि बढाने के उपाय	।=)
० धनवान बनने के गुप्त रहस्य	।=)
११-पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि	।=)
२-वशीकरण की सच्ची सिद्धि	।=)
-मरने के बाद हमारा क्या होता है	।=)
-जीव जन्तुओं की बोली समझना	।=)
-ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है?	।=)
६-क्या धर्म है ? क्या अधर्म ?	।=)
-गहना कर्मणोगति	।=)
-जीवन को गूढ़ गुत्थियों पर तात्विकप्रकाश	।=)
-पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा	।=)
शक्ति संचय के पथ पर	।=)
आत्म गौरव की साधना	।=)
२२-प्रतिष्ठा का उच्च सोपान	।=)
२३-मित्र भाव बढाने की कला	।=)
२४-आन्तरिक उल्लास का विकाश	।=)
२५-आगे बढने की तैयारी	।=)
२६-अध्यात्म धर्म का अवलम्बन	।=)
२७—ब्रह्मविद्या का रहस्योद्घाटन	।=)
२८-ज्ञान योग, कर्म योग भक्ति योग	।=)
२९—यम और नियम	।=
३०—आसन और प्राणायाम	।=)
३१—प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि	।=)
३२—तुलसी के अमृतोपम गुण	।=)
३३—आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान	।=)
३४—मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा	।=)
३५—ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग	।=)
३६—हस्त रेखा ज्ञान	।=)
३७—विवेक सतई	।=)
३८—संजीवनी विद्या	।=)
३९—गायत्री की चमत्कारी साधना	।=)
४०—महान जागरण	।=)
४१—तुम महान हो	।=)
४२—गृहस्थ योग	।=)
४३—अमृत पारस और कल्पवृक्षकी प्राप्ति	।=)
४४—घरेलू चिकित्सा	।=)
४५—बिना औषधि के कायाकल्प	।=)
४६—पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	।=)
४७—हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ?	।=)
४८—विचार करने की कला	।=)
४९—दीर्घ जीवन के रहस्य	।=)
५०—हम वक्ता कैसे बन सकते हैं	।=)
५१—लेखन कला	।=)
५२—प्रार्थना के प्रत्यक्ष चमत्कार	।=)
५३—विचार संचालन विद्या	।=)
५४—नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	।=)
५५—अध्यात्म शास्त्र	।=)
५६—स्वप्न दोष की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा	।=)
५७—सफलता के तीन साधन	।=)
५८—शिखा और सूत्र का रहस्य मय विवेचन	।=)
५९—दूध की आश्चर्यजनक शक्ति	।=)
६०—दैवी सम्पदा	।=)

पांच रुपये से अधिक की पुस्तकें लेने पर डाक खर्च माफ। पांच रु० से कम की पुस्तकों का डाक खर्च ग्राहक के जिम्मे होगा।

पत्र व्यवहार का पता—

मानव से !

(श्री० महावीर प्रसाद विद्यार्थी, साहित्यरत्न)

(१)

तू आशा और निराशा के दोलों में भूल रहा कब से !

विषम स्वार्थ का तिमिर-जाल तेरी आंखों में है छाया,
विश्व-रूप रमणीक एक क्षण नहीं दृष्टि-पथ में आया,
करुणाकर की सुषमा का पीयूष-पान कब कर पाया !
कल-कल करती बहती है कण-कण में स्नेहमयी सरिता
अपने कलुषित मन को तूने कब क्षण भर को नहलाया ?

पथ—जाल विषम यह जीवन का रे मानव ! भूल रहा कब से !
तू आशा और निराशा के दोलों में भूल रहा कब से !

(२)

सस्य श्यामला धरणी है लहलहा रही उल्लासमयी,
सभी दिशाओं में ईश्वर की आभा हास—विलासमयी,
प्रतिक्षण चलती जाती, चलती जाती सृष्टि विभासमयी,
ऐसा मधु का प्याला पीले, रोम—रोम नाचे तेरा,
विश्व बने वृन्दावन, तेरी जीवन-लीला रासमयी।

भवसागर में पवमान प्रबल तेरे प्रतिकूल रहा कब से !
तू आशा और निराशा के दोलों में भूल रहा कब से !

(३)

अपना घर कोमल कुसुमों के मधु—सौरभ से क्यों न भरे।
तेरा तन—पङ्कज—पराग मानव ! पर—सेवा में बिखरे।
नर्क—तुल्य जग में तू नन्दन का मधु-विभव—विकास करे।
अपनी कारा बना रहा क्यों रे मदान्ध ! अपने कर से,
कुटिल भाव कर दमन, तपे कञ्चन—सा तेरा मन निखरे।

पैरों से कुचल-कुचल तू फूलों को, चुन शूल रहा कब से !
तू आशा और निराशा के दोलों में भूल रहा कब से !